इष्टसिद्धि

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री
आसारामजी बापू के पावन सत्संग-प्रवचन

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य
संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन

प्रास्ताविक

इस युग के आत्मज्ञानी, भक्ति और योग की विभिन्न यात्राओं से गुजरे हुए पूज्यपाद स्वामीजी की अनुभव संपन्न वैदिक वाणी को, ऋषिप्रसाद को साधक सुविधापूर्वक पचा सकें और अपने जीवन को हर क्षेत्र में चमका सकें इस हेतु मंत्रानुष्ठान विषयक 'इष्टसिद्धि' नामक इस पुस्तक का प्रकाशन हो रहा है।

मानसिक व बौद्धिक बल का विकास करके अपना जीवन सदा-सदा के लिए शाश्वत् सुख में, शाश्वत शांति में, जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनंद में सराबोर करने की इच्छावाले साधकों के लिए यह संतप्रसाद आपके करकमलों में समर्पित करते हुए समिति कुछ अंशों में उऋण हो रही है।

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

इष्टसिद्धि

हमारे पास खाने को पर्याप्त अन्न, पहनने को वस्त्र, रहने को घर होते हुए भी हम भीतर से दुःखी क्यों हैं? दीन क्यों है ? अशान्त क्यों हैं ? क्योंकि हम लोग अपने भीतर की चेतना जगाने की तरकीब भूल गये हैं, अन्तर में निहित आनन्दसागर से संपर्क खो बैठे हैं, परमात्मा का अनुसंधान करने के संपर्क–सूत्र छोड़ बैठे हैं, मंत्रजप एवं उसके विधि–विधान त्याग चुके हैं। दिनों दिन पाश्चात्य जगत के बाह्य दिखावे से प्रभावित होते जा रहे हैं। फलतः जैसे वे लोग भौतिक साधनों से संपन्न होते हुए भी अशान्त हैं वैसे हमारा जीवन भी अशांति की ओर गिर रहा है।

वह भी ज़माना था जब घर–गृहस्थी में एक आदमी कमाता था और सौ आदमी शांति से खाते थे, आनन्द से जीते थे। केवल कौपीन पहनकर भी त्यागी लोग मस्ती में रहते थे। अभी तो कोट, पैन्ट, शूट, बूट, टाई आदि सब ठाठ–माठ होते हुए भी हृदय में होली है। हम चित्त की प्रशांति, आत्म–विश्रांति खो बैठे हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विवेक की जागृति

सौभाग्यवश जब हम किसी सच्चे संत–महापुरुष के सान्निध्य में पहुँच जाते हैं, सत्संग में ब्रह्मानंद छलकानेवाली उनकी अमृतवाणी सुनते हैं, ध्यानामृत से सराबोर करने वाली उनकी निगाहों में अपने जीवन की गहराइयों को छूने लगते हैं तब ऐसा लगता है कि भगवान हमारे करीब हैं। तत्त्ववेत्ता सदगुरु के कृपा–प्रसाद को पाकर ऐसा महसूस होता है कि जीवन को महान् बनाना कठिन नहीं है। हमारा खोया हुआ खजाना फिर से पा लेना दुष्कर नहीं है। लेकिन यह अवस्था कायम टिकती नहीं। चित्त पुराने संस्कारों में फिर से बहने लगता है। कई विघ्न और बाधाएँ हमको सताने लगती हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मनुष्य की द्विधा

एक तरफ चित्त चाहता है किः 'मनुष्य–जन्म दुर्लभ है अतः इस मनुष्य–जन्म का सदुपयोग करें। दुनिया में ऐसा कुछ कर लें कि हमारे पदचिह्न पर चलकर अन्य लोग भी अपना भाग्य बना लें।' दूसरी तरफ मन हमें जगत की ओर, बुद्धि के निर्णय जागतिक उपलब्धियों की ओर तथा शरीर भोग की ओर खींच ले जाता है।

ऐसे द्विधापूर्ण जीवन में क्या किया जाय? एक तरफ़ श्रेयस् की ओर खिंचाव होता है दूसरी तरफ़ प्रेयस की ओर खिंचाव होता है। हम न पूरे श्रेयस पर चल सकते हैं न पूरे प्रेयस् के उपभोक्ता हो सकते हैं। हम न पूरे सज्जन बन पाते हैं, न ईश्वरीय शाँति, चित्त की प्रशांति, आत्म–विश्रांति ले पाते हैं, न हमें संसार में शैतान होने से तृप्ति मिलती है। साधक और भक्त का यह अनुभव होता है। इसके क्या कारण हैं?

हम अच्छाई चाहते हैं लेकिन अच्छाई से पूरे चल नहीं पाते। बुराई से बचना चाहते हैं लेकिन बुराई से पूरे बच नहीं पाते। हमारा हाल ऐसा है किः

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः। जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।

हम धर्म जानते हैं लेकिन उस धर्म में हमारी प्रवृत्ति नहीं हो रही है। हम अधर्म को जानते हैं लेकिन उस अधर्म से हमारी निवृत्ति नहीं हो रही है। हम जानते हैं कि यह अच्छा नहीं है फिर भी उसमें फँसे रहते हैं। हम जानते हैं कि यह अच्छा है लेकिन उसमें हमारी प्रवृत्ति नहीं हो पाती।

मानवमात्र का यह प्रश्न है। जो अपने को मानव मानें उन सबका यह प्रश्न है।

मनुष्य चाहता है किः 'मैं श्रेष्ठ बन जाऊँ।' वह चाहता है किः 'मैं ईश्वर के साथ खेलूँ।' वह चाहता है किः 'मैं ईश्वर के साथ एक हो जाऊँ।' .....और साथ-ही-साथ उसको अपनी कमियाँ भी खटकती है।

भागवत में एक कथा आती है। कंस ने श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए षड्यंत्र रचा था। यज्ञ का आयोजन किया और श्रीकृष्ण को लेने के लिए अक्रूरजी को भेजा।

अक्रूरजी रास्ते में सोचने लगेः "आहा! श्रीकृष्ण से भेंट होगी। वे मुझे 'काका' कहकर बुलायेंगे। कितना आनन्द! वे घड़ियाँ कितनी सुहावनी होंगी ! लेकिन.... मेरा नाम तो अक्रूर है, कर्म मेरे क्रूर हैं। कंस का अन्न खाता हूँ, उस पापी की गुलामी करता हूँ। मेरे जैसे को श्रीकृष्ण मिलेंगे? मुझे देखकर अन्तर्धान तो नहीं हो जायेंगे?"

अक्रूरजी जब अपने कर्मों की ओर देखते हैं तो उनकी हिम्मत छूट जाती है, पैर थरथराते हैं। ..... और जब भगवान श्रीकृष्ण का सहज स्वभाव स्मरण में आता है, परमात्मा की उदारता, दयालुता, स्वाभाविकता, सहजता, गरिमा एवं आत्म-दृष्टि का विचार आता है तब हिम्मत आ जाती है।

ऐसा ही हम लोगों का हाल है। भगवान की ऊँचाई को देखते हैं, उनकी कृपा और करूणा को देखते हैं तो हिम्मत आ जाती है किः 'अरे ! क्यों नहीं होगा ब्रह्मज्ञान? आत्म-साक्षात्कार होना कोई कठिन थोडा ही है! परीक्षित को सात दिन में हो सकता है, राजा जनक को हो सकता है, अष्टावक्र को माता के गर्भ में हो सकता है, लीलाशाह बापू को हो सकता है तो हमको क्यों नहीं होगा?' बड़ी हिम्मत आती है। ईश्वर की गरिमा और महापुरुषों के जीवन की ओर देखते हैं तो हिम्मत आ जाती है किन्तु जब हम अपनी ओर देखते हैं तो हमारे पैर ढीले हो जाते हैं।

इसका कारण क्या है? हमारी जो संभावनाएँ हैं, हमारी जो सुषुप्त चेतना है, हममें जो सुषुप्त सत्त्व है उस सत्त्व को हमने विकसित नहीं किया और रजस्-तमस् हममें पूरा विकसित हो रहा है। इस रजस्-तमस् से प्रेरित होकर जब हमारी प्रवृत्तियाँ होती हैं तो हम मन से कमजोर हो जाते हैं। जो सत्त्व में पहुँचे हैं या सत्त्व से भी पार हो गये हैं उनके जीवन का स्मरण करते हैं तो हिम्मत आ जाती है। हम जप, उपासना, अनुष्ठान, ध्यान, भजन करने में तत्पर हो जाते हैं।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥

'श्रेय और प्रेय (परस्पर मिश्रित होकर) मनुष्य के पास आते हैं। बुद्धिमान पुरुष यथायोग्य सोच-विचार करके इन दोनों को अलग करता है। विवेकी पुरुष प्रेय और श्रेय में से श्रेय को ग्रहण करता है किन्तु मूढ़ योगक्षेम चलाने के लिए प्रेय को पसन्द करता है।'

(कठोपनिषद् - २.२.२)

इससे केवल परमात्म-प्राप्ति ही होती है, ऐसी बात नहीं है। मंत्रजप, अनुष्ठान, उपासना से अपना ऐहिक, पारमार्थिक, स्वर्गीय, पैतृक और पुत्र-पौत्र का कल्याण भी कर सकते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

शास्त्रों में उपासना के प्रसंग

शास्त्रों में आराधना-उपासना करके कार्य सिद्ध करने के कई प्रसंग आते हैं। राजा दशरथजी ने यज्ञदेवता की आराधना की। यज्ञदेवता प्रकट हुए, खीर का प्रसाद दिया। उससे श्रीरामचन्द्रजी अवतरित हुए।

भगवान श्रीराम ने भी रामेश्वर की स्थापना की थी, शिवोपासना की थी। **'ॐ नमः शिवाय'** का जपानुष्ठान किया था और बाद में लंका पर चढ़ाई की थी।

भगवान श्रीकृष्ण की रानी जाम्बवती को पुत्र नहीं था। वह दुःखी रहती थीं। श्रीकृष्ण ने सूर्यनारायण की आराधना की तो जाम्बवती को साम्ब नामक बेटा प्राप्त हुआ।

भगवान विष्णु भी देवाधिदेव भगवान शिव की उपासना करते थे। प्रतिदिन एक हजार कमल चढ़ाते। शिवजी ने एक दिन परीक्षा करने के लिए माया से एक कमल छुपा दिया। कमल चढ़ाते समय विष्णुजी को जब हजारवाँ कमल नहीं मिला तो उन्होंने अपना नेत्रकमल ही निकालकर भगवान शिव को चढ़ा दिया। इस पर भोलेनाथ प्रसन्न हो गये और विष्णुजी को सुदर्शन चक्र प्रदान किया।

यमराज ने भी नर्मदा के किनारे यज्ञोपासना की थी और यमपुरी के अधिष्ठाता बने।

ध्रुव को सौतेली माँ का ताना लगा, चोट पहुँची और ईश्वरोपासना करने चल पड़ा जंगल की ओर। नारदजी ने मंत्रदीक्षा दी। ध्रुव ने द्वादशाक्षरी मंत्र का अनुष्ठान किया और दुनिया जानती है कि छः महीने में उसके आगे सगुण साकार परमात्मा प्रगट हो गये।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मंत्रः पारमार्थिक क्षेत्र का टेलिफोन

मंत्र ऐसा साधन है कि हमारे भीतर सोयी हुई चेतना को वह जगा देता है, हमारी महानता को प्रकट कर देता है, हमारी सुषुप्त शक्तियों को विकसित कर देता है।

सदगुरु से प्राप्त मंत्र का ठीक प्रकार से, विधि एवं अर्थ से, प्रेमपूर्ण हृदय से जप किया जाय तो क्या नहीं हो सकता? जैसे टेलिफोन के डायल पर नम्बर ठीक से घुमाया जाय तो विश्व के किसी भी देश के कोने में स्थित व्यक्ति से बातचीत हो सकती है वैसे ही मंत्र का ठीक से जप करने से सिद्धि मिल सकती है। जब टेलिफोन के इतने छोटे-से डायल का ठीक से उपयोग करने से हम विश्व के साथ सम्बन्ध जोड़ सकते हैं तो भीतर के डायल का ठीक से उपयोग करके विश्वेश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ लें इसमें क्या आश्चर्य है? विश्व का टेलिफोन तो कभी 'एन्गेज' मिलता है लेकिन विश्वेश्वर का टेलिफोन कभी 'एन्गेज' नहीं होता। वह सर्वत्र और सदाकाल तत्पर है। हाँ... नम्बर घुमाने में जरा-सा हेर-फेर किया तो राँग नम्बर लगेगा। घण्टी बजानी है कहाँ और बजती है कहीं और । इस प्रकार मंत्र में भी थोड़ा सा हेर-फेर कर दें, मनमानी चला दें तो परिणाम ठीक से नहीं मिलेगा।

आज कल धर्म का प्रचार इतना होते हुए भी मानव के जीवन में देखा जाय तो वह तसल्ली नहीं, वह संगीत नहीं, वह आनन्द नहीं। क्या कारण है? विश्वेश्वर से संपर्क करने के लिए ठीक से नम्बर जोड़ना नहीं

आता। मंत्र का अर्थ नहीं समझते, अनुष्ठान की विधि नहीं जानते या जानते हुए भी लापरवाही करते हैं तो मंत्र सिद्ध नहीं होता।

मंत्र जपने कि विधि, मंत्र के अक्षर, मंत्र का अर्थ, मंत्रानुष्ठान की विधि हम जान लें तो हमारी योग्यता खिल उठती है। हम विश्वेश्वर के साथ एक हो सकते हैं। अरे ! 'हम स्वयं विश्वेश्वर हैं....' ऐसा साक्षात्कार कर सकते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुष्ठान की आवश्यकता

हमारे स्थूल शरीर को माता-पिता जन्म देते हैं और सच्चे ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु, आत्मनिष्ठा में जगे हुए महापुरुष हमारे चिन्मय वपु को मंत्रदीक्षा के द्वारा जन्म देते हैं। जैसे एक दीपक से दूसरा दीपक प्रकाशित हो उठता है वैसे ही दीक्षा के समय मंत्र के साथ साधक में, शिष्य में चैतन्य की चिंगारी सदगुरु के द्वारा स्थापित होती है। मंत्र प्राप्त होने पर यदि उसका अनुष्ठान न किया जाय, विधिसहित उसका पुरश्चरण करके मंत्र सिद्ध न किया जाय, चिंगारी को साधना के द्वारा फूँक-फूँककर प्रकाशित ज्योत में रूपान्तरित न की जाय तो मंत्र से उतना लाभ नहीं होता जितना होना चाहिए।

श्रद्धा, भक्तिभाव एवं यथायोग्य विधि-विधान का समन्वय करके जब मंत्र के अर्थ को, मंत्र के रहस्य को अन्तर्देश में आत्मसात् किया जाता है तब साधक में चैतन्य के दिव्य आन्दोलन उठते हैं। उससे जन्म-जन्मांतर के पाप-तापमय संस्कार धुलने लगते हैं। चेतना जीवन्त, ज्वलन्त व जागृत रूप में चमक उठती है। श्रद्धा-भाव से मंत्र का अनुष्ठान किया जाता है तो परमात्म-प्रेम व आत्मज्ञान के उदय की सम्भावना बढ़ जाती है।

अनुष्ठान कई प्रकार के होते हैं। उनमें से मंत्रजपानुष्ठान को केन्द्र में रखकर कुछ बातें जानेंगे। मंत्रानुष्ठान में कुछ नियमों की आवश्यकता होती है। यम-नियम के सम्यक् पालन से आन्तर-बाह्य शुद्धि व शांति बनी रहती है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुष्ठान कौन करे?

मंत्रानुष्ठान स्वयं करना चाहिए। यह सर्वोत्तम कल्प है। यदि श्री गुरुदेव ही कृपा करके अनुष्ठान कर दें तब तो पूछना ही क्या ! हम अनुष्ठान न कर सकते हों तो परोपकारी, प्रेमी, शास्त्रवेत्ता, सदाचारी ब्राह्मण के द्वारा भी कराया जा सकता है। कहीं-कहीं अपनी धर्मपत्नी से भी अनुष्ठान कराने की आज्ञा है। ऐसे प्रसंग में पत्नी को पुत्रवती होनी चाहिए। पत्नी भी सतत अनुष्ठान नहीं कर सकती। उसको मासिकधर्म की समस्या है। मासिक धर्म के समय में अनुष्ठान खण्डित हो जाता है। **स्त्रियों को अनुष्ठान के उतने दिन आयोजित करने चाहिए जितने दिन उनका हाथ स्वच्छ हो।**

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

स्थान की पसन्दगी

अनुष्ठान के लिए ऐसी जगह पसन्द करो कि जहाँ तुम्हारा मन मंत्र में लग सके, मंत्र के अर्थ में तल्लीन हो सके, चित्त की ग्लानि मिटे और प्रसन्नता बढ़े। अनुष्ठान के लिए ऐसा स्थान ही सर्वश्रेष्ठ है।

'श्रीगुरुगीता' में निर्देश है कि: "जपानुष्ठान के लिए सागर या नदी के तट पर, तीर्थ में, शिवालय में, विष्णु के, देवी के मंदिर में या अन्य शुभ देवालय में, गौशाला में, वटवृक्ष या आँवले के वृक्ष के नीचे, मठ में, तुलसीवन में, पवित्र निर्मल स्थान में बैठना चाहिए। स्मशान में, बिल्व, वटवृक्ष या कनकवृक्ष के नीचे और आम्रवृक्ष के पास जप करने से सिद्धि जल्दी होती है।"

अनुष्ठान के लिए ऐसी जगह पसन्द मत करो जहाँ आप भयभीत होते रहो, प्राकृतिक घटनाओं से विक्षिप्त होते रहो, हिंसक प्राणियों से डरते रहो तथा जहाँ के लोग अनुष्ठान के विरोधी हों। मन में विरोधियों के विरोध का चिन्तन होगा, शत्रु का चिन्तन होगा, भय होगा तो मंत्र में मन लग नहीं पायेगा। जहाँ चोर-डाकू आदि का भय हो, सर्प-बिच्छू आदि का भय हो वहाँ अनुष्ठान नहीं किया जाता।

इन्द्रियों को खींचकर बहिर्मुख कर दे, ऐसे वातावरण में अनुष्ठान सफल नहीं होता। सिनेमागृह में बैठकर या अपने घर में टी.वी., रेडियो आदि चलाते हुए अनुष्ठान करने से सफलता नहीं मिलती।

अन्यत्र कहीं न जाकर अपने निवास स्थान में ही एक कमरा साफ-सुथरा, पवित्र बनाकर, धूप-दीप, अगरबत्ती, पुष्प-चन्दनादि से मनभावन वातावरण रचकर अनुष्ठान के लिए बैठ सकते हैं। पूरा कमरा न हो तो घर का एकाध कोना भी चल सकता है।

सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओं के सामने बैठकर जप करना उत्तम माना गया है। यह नियम सार्वत्रिक नहीं है। मुख्य बात यह है कि जहाँ बैठकर जप करने से चित्त की ग्लानि मिटे और प्रसन्नता बढ़े, वही स्थान सर्वश्रेष्ठ है।

घर में जप करने से जो फल होता है उससे दसगुना फल गौशाला में जप करने से होता है। हाँ, उस गौशाला में गायों के साथ बैल नहीं होना चाहिए। यदि वहाँ बैल होगा तो उनमें एक-दूसरे के चुम्बकत्व से 'वायब्रेशन' गन्दे होते हैं।

जंगल में जप करने से घर की अपेक्षा सौ गुना फल होता है। तालाब या सरोवर के किनारे हजारगुना फल होता है, नदी या सागर के तीर, पर्वत या शिवालय में लाखगुना फल होता है। जहाँ ज्ञान का सागर लहराया हो, ज्ञान की चर्चा हुई हो, जहाँ पहले कोई ज्ञानी हो गये हों ऐसे कोई तीर्थ में अनुष्ठान करना इन सबसे श्रेष्ठ है। यदि सदगुरु के पावन सान्निध्य में, जीवित ब्रह्मज्ञानी महापुरुष के मार्गदर्शन में अनुष्ठान करने का सौभाग्य मिल जाय तो अनन्तगुना फल होता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आसन

(१) ध्यान, जप आदि साधना के लिए यथोचित आसन होना अति आवश्यक है। जप करने से हमारे शरीर में विद्युतशक्ति पैदा होती है। आध्यात्मिक उत्थान में यह शक्ति बड़ी महत्त्वपूर्ण है। जिसके शरीर में विद्युतशक्ति

विपुल प्रमाण में होती है, साहस, हिम्मत और निरोगता उसका स्वभाव बन जाता है। जिसके शरीर में यह विद्युतशक्ति कम है उसको रोग घेर लेते हैं।

बिना आसन जप करने बैठने से शरीर में उत्पन्न होने वाली विद्युतशक्ति को भूमि खींच लेती है। अतः इस विद्युतशक्ति के सरंक्षण के लिए जप के समय आसन पर ही बैठना चाहिए। यह आसन विद्युत का अवाहक (Non-conductor) होना जरूरी है जिससे विद्युत उससे पार गुजर न सके। गरम आसन हो, मोड़ा हुआ कम्बल हो तो अच्छा है। गद्दी पर सादे टाट या प्लास्टिक का टुकड़ा भी चल सकता है।

भूमि पर खुल्ले पैर चलने से भी शरीर की विद्युतशक्ति भूमि द्वारा खिंची जाती है। अतः साधना में ऐसा वैज्ञानिक अभिगम अपना कर अपनी शक्ति का संरक्षण एव संवर्धन करना चाहिए। यह वैज्ञानिक दृष्टिबिन्दु '**श्रीगुरुगीता**' में भी देखा जाता है। भगवान शंकर कहते हैं–"बिना आसन किये हुए जप नीच कर्म हो जाता है, निष्फल हो जाता है।" कौन–से आसन का क्या प्रभाव होता है, किस हेतु कैसा आसन उपयुक्त है इत्यादि का वर्णन करते हुए आगे कहते हैं–

"कपड़े के आसन पर बैठ कर जप करने से दरिद्रता आती है, पत्थर के आसन पर रोग, भूमि पर बैठकर जप करने से दुःख आता है और लकड़ी के आसन पर किये हुए जप निष्फल होते हैं। कुश और दुर्वा के आसन पर सफेद कम्बल बिछाकर उसके ऊपर बैठकर जप करना चाहिए। काले मृगचर्म और दर्भासन पर बैठकर जप करने से ज्ञानसिद्धि होती है। व्याघ्रचर्म पर जप करने से मुक्ति प्राप्त होती है परन्तु कम्बल के आसन पर सर्व सिद्धि प्राप्त होती है।"

दूसरे के आसन पर बैठकर जप करने से भी जप फलदायी नहीं होते। साधना के लिए अपना निजी आसन अलग रखें। उसे अन्य लोगों के उपयोग में न लायें। अपना आसन, अपनी माला, अपना गुरुमंत्र सुरक्षित रखना चाहिए।

सिर पर कपड़ा रखकर किये हुए जप फलते नहीं।

(२) अनुष्ठान में लम्बे समय तक स्थिरता एवं एकाग्रता से बैठने के लिए पद्मासन, अर्धपद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन का अभ्यास हो तो अच्छा है। किसी आसन का अभ्यास न हो तो सुखासन में ही स्वस्थ, सीधे होकर बैठें। खास ध्यान दें कि सामान्यतया बैठते वक्त और विशेषकर अनुष्ठान के वक्त रीड की हड्डी बिल्कुल सीधी रखें।

हमारी जीवनशक्ति, चेतनाशक्ति बीज रूप से नीचे के केन्द्र में, मूलाधार चक्र में सुषुप्त पड़ी है। जप के द्वारा वह जागृत होती है। जब वह जागृत होकर ऊपर उठती है तभी काम देती है। जप के द्वारा इसको जगाना है, विकसित करना है। यथार्थ रीति से, सदगुरु के आदेशानुसार, भली प्रकार समझकर, प्रेम–आदरपूर्वक जप करने से जीवनशक्ति जागृत होती है। उस जगी हुई शक्ति को ऊपर की ओर उठने के लिए रीढ़ की हड्डी सीधी होना नितान्त आवश्यक है।

स्कूल में भी शिक्षक बच्चों को पढ़ाते वक्त सावधान करते हैं, सीधे टटार बैठाते हैं। जो बच्चे पढते वक्त, लिखते वक्त नीचे झुककर बूढे की तरह बैठते हैं उन्हें याद कम रहता है। वे पढ़ाई में कच्चे रहते हैं और आगे चलकर जीवन में भी दुर्बल रहते हैं। उनमें साहस, हिम्मत, उत्साह का विकास नहीं होता।

हिटलर जब किसी देश पर आक्रमण करता तब पहले अपने आदमी भेजकर जाँच करवाता कि उस देश के लोग रीड की हड्डी सीधी करके चलते–बैठते हैं कि कमर झुकाकर। देश के जवान बूढ़ों की तरह चलते–बैठते हैं कि बूढ़े भी जवान की तरह चलते–बैठते हैं। जिस देश के लोग रीड की हड्डी सीधी करके चलते–बैठते मालूम पड़ते वहाँ हिटलर समझ जाता कि इस देश पर विजय पाना कठिन है। जो लोग रीड की हड्डी सीधी करके चलते–बैठते हैं वे उत्साही होते हैं। उनकी जीवन–ऊर्जा ठीक से काम

देती है। जो लोग सिकुड़कर बैठते हैं और झुककर चलते हैं वे लोग जिन्दे ही मुर्दे हैं। उनको हराने में देर नहीं लगती।

जो लोग दीवार का सहारा लेकर जप करने बैठते हैं उनको दीवार अपने जैसा जड़ बना देती है। अतः अपनी जीवनशक्ति का ठीक से विकास हो सके इसके लिए जप के समय दीवार का सहारा छोड़कर सीधे होकर बैठें।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

दिशा

सामान्यतया पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके जप करना चाहिए। फिर भी अलग-अलग हेतुओं के लिए अलग-अलग दिशा के प्रति मुख करके जप करने का विधान है।

'**श्रीगुरुगीता**' में आता है किः "उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठकर जप करने से शांति, पूर्व दिशा की ओर वशीकरण, दक्षिण दिशा की ओर मारण सिद्ध होता है तथा पश्चिम दिशा की ओर मुख करके जप करने से धन की प्राप्ति होती है।

अग्नि कोण की तरफ मुख करके जप करने से आकर्षण, वायव्य कोण की तरफ शत्रुओं का नाश, नैऋत्य कोण की तरफ दर्शन और ईशान कोण की तरफ मुख करके जप करने से ज्ञान की प्राप्ति होती है।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

माला

साधकों के लिए माला बड़ा महत्त्वपूर्ण उपकरण है। मंत्रजाप में माला बड़ी सहायक होती है। इसलिए समझदार साधक अपनी माला को प्राण जैसी प्रिय समझते हैं और गुप्त धन की भाँति उसकी सुरक्षा करते हैं। जपमाला की प्राण-प्रतिष्ठा पीपल के पत्ते पर रखकर उसकी पूजा इस मंत्र के साथ करें-

त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव।
शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा॥

अर्थात् 'हे माला! तू सर्व देवों की प्रीति और शुभ फल देने वाली है। मुझे तू यश और बल दे तथा सर्वदा मेरा कल्याण कर।' ऐसे कहकर की जाती है तब उसमें वृत्ति जागृत हो जाती है और माला में परमात्म-चेतना का आभास आ जाता है। माला को कपड़े से ढँके बिना या गौमुखी में रखे बिना जो जप किये जाते हैं वे फलते नहीं।

अनुष्ठान के दिनों में हररोज के जप की संख्या निश्चित होनी आवश्यक है। यह संख्या पूर्ण करने के लिए, अनुष्ठान में उत्साह एवं लगन जारी रखने के लिए, प्रमाद से बचने के लिए माला बड़ी सहायक होती है। जप करते-करते मन अन्यत्र चला जायेगा या तंद्रा घेर लेगी तो माला रुक जायेगी। यदि माला चलती रही तो जीभ भी चलती रहेगी और भटकते मन को थोड़ी देर में वापस खींच लायेगी। जीभ और माला दोनों घूमती रहीं तो बाहर घूमने वाला मन थोड़ी ही देर में अपने वह स्थिर अंश के पास लौट आयेगा जो मूर्च्छित रूप से

जीभ और माला को चलाने में कारणरूप था। माला और जीभ को चलाने में जो श्रद्धा और विश्वास की शक्ति काम कर रही है वह शक्ति एक दिन अवश्य व्यक्त हो जायेगी, जागृत हो जायेगी।

माला इतना महत्त्वपूर्ण कार्य करती है तब आदरपूर्वक उसका विचार न करके यों ही साधारण–सी वस्तु समझ लेना, केवल गिनने की एक तरकीब मात्र समझकर एक सामान्य वस्तु की तरह अशुद्ध अवस्था में भी साथ रखना, बायें हाथ से माला घुमाना, लोगों को दिखाते फिरना, पैर तक लटकाये रखना, जहाँ कहीं रख देना ये बातें समझदारी और श्रद्धा की कमी से होती हैं।

मालाएँ तीन प्रकार की होती हैं– करमाला, वर्णमाला और मणिमाला। अँगुलियों पर गिनकर जो जाप किया जाता है वह करमाला जाप है। वर्णमाला का अर्थ है अक्षरों के द्वारा जप की संख्या गिनना। मणि माने मनका पिरोकर जो माला बनायी जाती है उसे मणिमाला कहते हैं।

अनुष्ठान में इस मणिमाला का ही उपयोग करना हितकर एवं सरल है। यह माला अनेक चीजों की बनती है, जैसे रुद्राक्ष, तुलसी, शंख, पद्मबीज, मोती, स्फटिक, मणि, रत्न, सुवर्ण, चाँदी, चन्दन, कुशमूल आदि। सूत और ऊन से बनी हुई माला भी काम में आती है।

सब प्रकार के जप में १०८ दानों की माला काम आती है।

एक चीज की माला में दूसरी चीज का मनका नहीं आना चाहिए। माला के सब मनके एक जैसे होने चाहिए, छोटे–बड़े एवं खण्डित नहीं होने चाहिए।

सब मालाओं में वैष्णवों के लिए तुलसी की माला और स्मार्त, शाक्त आदि के लिए रुद्राक्ष की माला सर्वोत्तम मानी गयी है। ब्राह्मण कन्याओं के द्वारा निर्मित सूत से माला बनायी जाय तो वह भी अति उत्तम है।

शांतिकर्म में श्वेत, वशीकरण में लाल, अभिचार में काली और मोक्ष तथा ऐश्वर्य के लिए रेशमी सूत की माला विशेष उपयुक्त है।

माला घुमाते वक्त तर्जनी (अँगूठे का पास वाली) अँगुली माला को नहीं लगनी चाहिए। मेरु का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। माला घुमाते–घुमाते जब मेरु आये तब माला को उलटकर दूसरी ओर घुमाना प्रारंभ करना चाहिए।

ध्यान रहे कि माला शरीर के अशुद्ध माने जाने वाले अंगों का स्पर्श न करे। नाभि के नीचे का पूरा शरीर अशुद्ध माना जाता है अतः माला घुमाते वक्त माला नाभि से नीचे नहीं लटकनी चाहिए एवं भूमि का स्पर्श भी नहीं होना चाहिए।

माला को स्वच्छ कपड़े से ढँककर घुमाओ। गौमुखी में माला रखकर घुमाते हुए जप किया जाय तो उत्तम है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जप की संख्या

अपने इष्टमंत्र या गुरुमंत्र में जितने अक्षर हों उतने लाख मंत्रजप करने से उस मंत्र का अनुष्ठान पूरा होता है। मंत्रजप हो जाने के बाद उसकी दशांश संख्या में हवन करना होता है। हवन में हर मंत्रोच्चार के साथ अग्नि में आहुति देना होता है। हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश ब्रह्मभोजन कराना होता है।

मान लो हमारा मंत्र एक अक्षर का है तो हमें अनुष्ठान करने के लिए एक लाख जप करना चाहिए, दस हजार हवन, एक हजार तर्पण, सौ मार्जन और दस की संख्या में ब्रह्मभोजन कराना चाहिए।

यदि हवन, तर्पण, ब्रह्मभोजनादि कराने का सामर्थ्य न हो, अनुकूलता न हो, आर्थिक स्थिति कमजोर हो तो हवन, तर्पण, मार्जन, ब्रह्मभोजन के बदले उतनी संख्या में अधिक जप करने से भी काम चल जाता है। इसका मतलब यह नहीं है कि आर्थिक सुविधा होते हुए भी अनुष्ठान दरिद्रों की नाईं करें।

यदि एक अक्षर का मंत्र है तो १०००००+१००००+१०००+१००+१०=१११११० मंत्रजाप करने से सब विधियाँ पूरी मानी जाती हैं। आपके मंत्र में जितने अक्षर हों उनकी संख्या से मंत्र के १११११० का गुणा करो तो आपके अनुष्ठान की जपसंख्या मिलेगी।

अनुष्ठान के प्रारंभ में ही हररोज की जपसंख्या का आयोजन कर लो। कुल कितनी संख्या जप करने हैं और यह संख्या कितने दिनों में पूरी करनी है, इसका हिसाब लगाकर एक दिन के जप की संख्या निकालो। कितनी मालाएँ करने से वह संख्या पूरी होगी, यह देख लो। फिर हररोज उतनी मालाएँ करो। एक दिन में भी सुबह, दोपहर, शाम, रात्रि की जपसंख्या निश्चित कर दी जाय तो अच्छा है।

हररोज समान संख्या में जप करो। एक दिन १२० मालाएँ की, दूसरे दिन १४० कीं, तीसरे दिन १३० कीं, चौथे दिन ११० कीं.... ऐसे नहीं। अनुष्ठान के सब दिनों की जपसंख्या एक समान होनी जरूरी है। हाँ, यह विधान केवल आसन पर बैठकर जितनी माला करते हो, उसकी संख्या के बारे में ही है। चलते–फिरते, उठते–बैठते, खाते–पीते, श्वास के साथ यदि तुम मानसिक जप करते हो, बिना माला के, तो उसकी कोई गिनती रखने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार के मानसिक जप में तो यही कहा जा सकता हैः **अधिकस्य अधिकं फलम्।** जितना अधिक हो सके उतना अच्छा है। स्तोत्रपाठ मानसिक किया जाय तो उसका फल नहीं होता और अनुष्ठान में मंत्रजाप जोर से चिल्ला–चिल्ला कर किया जाय तो उसका फल नहीं होता।

जप में न बहुत जल्दबाजी करनी चाहिए और न बहुत विलम्ब। गाकर जपना, सिर हिलाना, लिखा हुआ पढ़ना, मंत्र का अर्थ न जानना और बीच–बीच में भूल जाना–ये सब मंत्रसिद्धि के प्रतिबंधक हैं।

जप के समय यह चिन्तन रखना चाहिये कि इष्टदेवता, मंत्र और गुरुदेव एक ही हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भोजन

अनुष्ठान के दिनों में भोजन बिल्कुल सादा, सात्त्विक, हल्का और पुष्टिकारक होना जरूरी है। पेट भारी हो जाय उतना अधिक एवं विशेष चिकना–चपाटा, गरिष्ठ भोजन नहीं करें। भोजन उतना कम भी नहीं करें, भुखामरी नहीं करें कि जिससे जप के कारण दिमाग चकराने लगे, सिर में खुश्की चढ़ जाये। कब्ज करने वाला, तामसिक, राजसिक एवं अभक्ष्य भोजन वर्ज्य है। अण्डे–मछली की बात तो दूर रही, लहसुन, प्याज, चुकन्दर आदि चीजें भी अनुष्ठान के दिनों में नहीं खायी जाती है। प्याज, लहसुन, तली हुई एवं देर से पचने वाली चीजें साधना में हानिकर्ता हैं। इनसे चित्त की शांति और प्रसन्नता भंग होती है।

बासी भोजन भी नहीं करना चाहिए। भोजन बना है सुबह आठ बजे और आप खा रहे हैं दोपहर एक बजे तो यह भोजन तामसी हो गया। भोजन बनने के बाद तीन घण्टे के भीतर–ही–भीतर खा लेना चाहिए। जो लोग दो–चार दिन का भोजन बनाकर फ्रिज में रखते हैं और बासी करके खाते हैं उनके जीवन में देखो तो खूब बेचैनी और अशांति है। प्रचुर मात्रा में भोग्य पदार्थ हैं लेकिन शांति नहीं है। विदेशों में यही हालत है।

शांति पाने की युक्ति ('टेकनिक') को वे लोग जानते नहीं। यंत्र की 'टेकनिक' को वे खूब जानते हैं लेकिन मंत्र और शांति की 'टेकनिक' को वे बेचारे नहीं जानते।

भोजन के एवं अन्न के कई प्रकार के दोष होते हैं। अन्न का सबसे बड़ा दोष है न्यायोपार्जित न होना। जो लोग चोरी, डकैती, बेईमानी, अन्याय आदि करके आजीविका चलाते हैं, रोटी कमाते हैं उनके मूल में ही अशुद्ध भावना है, इसलिए वह भोजन सर्वथा दूषित रहता है। **जैसा अन्न वैसा मन।** ऐसे दूषित भोजन से शुद्ध चित्त का निर्माण होना असंभव है।

अपनी कमाई के भोजन में भी यदि दूसरों को चित्त कष्ट पाता हो तो ऐसे भोजन से चित्त का प्रसाद नहीं मिलेगा। पेट भर भोजन न मिलने पर जिस गौ का बछड़ा तड़पता हो, गौ की आँखों से आँसू गिर रहे हो, उस गाय का दूध चाहे न्यायोपार्जित हो तो भी चित्त को शुद्ध एवं प्रसन्न करने के लिए उपयोगी नहीं होगा। जो भोजन ग्रहण करने से किसी का हक मारा जाता हो, किसी को कष्ट होता हो तो उस भोजन से खिन्नता के बीज होते है।

कोई आदमी ने दूषित कर्म से, अन्याय से, धोखा–धड़ी से कमाया और कुछ पदार्थ हमें दे गया। वह पदार्थ खाकर हम भजन करेंगे तो यह निमित्त अच्छा नहीं।

बिना परिश्रम से मिला हुआ भोजन भी ठीक नहीं है। साधुता, संन्यास या साधना बिना का आदमी यदि बिना परिश्रम का भोजन खायेगा तो उसका तेज कम होने लगेगा। साधक है तो साधना का परिश्रम कर ले, ब्रह्मचारी है तो अपने ब्रह्मचर्य–व्रत में अडिग रह ले तो उसके लिए बिना परिश्रम के भोजन में, बिना नौकरी–धंधे के भोजन में हरकत नहीं है। लेकिन जो न संन्यासी है, न ब्रह्मचारी है, न साधना करता है और दूसरे का उपार्जित भोजन खा लेता है वह तेजोहीन हो जाता है। उसमें तमोगुण की वृद्धि हो जाती है। वह प्रमादी और आलसी बन जाता है। उसके चित्त का मल दूर होना कठिन है।

भोजन में तीन प्रकार के दोष होते हैं– जातिदोष, निमित्तदोष और आश्रयदोष। साधक को इन तीनों दोषोंवाले भोजन से बचना चाहिए।

भोजन स्वभाव से ही दूषित हो यह भोजन का जातिदोष है। जैसे, मांस, मछली, अण्डा, लहसुन, प्याज आदि। दूसरा है निमित्तदोष। हमने भोजन अपना स्व का बनाया है, परिश्रम किया है, नौकरी धंधा किया है, अनाज लाये हैं, घर में बना रहे हैं, चीजें भी सात्त्विक हैं, तामसी नहीं है लेकिन बनानेवाली देवी का हाथ शुद्ध नहीं है अथवा बेटी का हाथ शुद्ध नहीं है, वह मासिक धर्म में आ गयी है और उसकी नजर भोजन पर पड़ी है तो वह भोजन हमें शांति पाने में मदद नहीं करेगा, अशांत होने में मदद करेगा। भोजन को कौआ, कुत्ता, बिल्ली छू जाय तो भी अपवित्र हो जाता है। यह भोजन का निमित्तदोष है।

भोजन को कौआ, कुत्ता, बिल्ली ने छूआ नहीं, मासिकधर्मवाली ने बनाया नहीं, भोजन हमारे परिश्रम का है, स्वउपार्जित है, सात्त्विक है, तामसिक नहीं है लेकिन हमने भोजन बनाया है स्मशान में जाकर तो यह भोजन अपवित्र है। भोजन का आश्रय अशुद्ध है। स्थान के कारण भोजन अशुद्ध हो जाता है। शुद्ध दूध भी शराबखाने में रख दिया जाय तो वह अशुद्ध हो जाता है। यह भोजन का आश्रयदोष है। इसलिए पहले के जमाने में और कहीं लीपा–पोती करे न करे लेकिन रसोईघर में तो पहले ही किया जाता था। जगह पवित्र करके ही भोजन बनाया जाता था। इन बातों को थोड़ा– सा ही गौर से ध्यान में लेकर अमल करें तो कुछ ही दिनों में मंत्र के चमत्कार को आप देख सकेंगे।

भोजन के रस से ही शरीर, प्राण और मन का निर्माण होता है। जो अशुद्ध भोजन करते हैं उनके शरीर में रोग, प्राणों में क्षोभ और चित्त में ग्लानि की वृद्धि होती है। खिन्न चित्त में मंत्रदेवता के प्रसाद का प्रादुर्भाव नहीं होता।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मौन

जब अनुष्ठान चलता हो तो उन दिनों में बिल्कुल मितभाषी होना जरूरी है। तीन शब्द बोलने से काम चल जाता हो तो चार शब्द नहीं बोलें और हो सके तो बिल्कुल ही मौनव्रत ले लें।

मुनिवर मौनी के दो प्रकार बताते हैं– काष्ठमौनी और जीवन्मुक्त। परमात्मा की भावना से रहित शुष्क क्रिया में बद्धनिश्चय और हठ से सब इन्द्रियों को वश में करके रहने वाले मुनि को काष्ठमौनी कहा जाता है। इस विनाशशील संसार के स्वरूप को यथार्थ रूप में जानकर जो इस विशुद्धात्मा व परमात्मा में स्थित ज्ञानी महात्मा बाहर लौकिक व्यवहार करते हुए भी अन्दर विज्ञानानन्दघन परमात्मा में तृप्त रहते हैं उनको जीवन्मुक्त कहा जाता है।

मौन को जाननेवाले मुनि मौन के चार प्रकार बताते हैं–

(१) वाचिक मौन (२) इन्द्रिय मौन (३) काष्ठ मौन (४) सुषुप्त मौन।

वाचिक मौन का अर्थ होता है वाणी का निरोध। इन्द्रिय मौन का अर्थ है हठपूर्वक विषयों से इन्द्रियों का निग्रह करना। काष्ठ मौन का अर्थ है सम्पूर्ण चेष्टाओं का त्याग। परमात्मा के स्वरूपानुभव में जो जीवन्मुक्त निरन्तर निमग्न रहते हैं उनके मौन को सुषुप्त मौन कहा जाता है।

काष्ठ मौन में वाचिक मौन और इन्द्रिय मौन अंतर्गत है । सुषुप्त मौनावस्था में जो तुरीयावस्था है वही जीवन्मुक्तों की स्थिति है। प्रथम तीन प्रकार के मौन प्रस्फुरित हो रहे चित्त की अवस्था के हैं, भक्तों एवं साधकों की साधनावस्था के हैं जबकि चौथा जो सुषुप्त मौन है वह जीवन्मुक्तों कि सिद्ध अवस्था का है। इस मौन में पहुँचे हुए सिद्ध पुरुष का पुनर्जन्म नहीं होता।

सुषुप्त मौन में सम्पूर्ण इन्द्रियवृत्तियाँ अनुकूलता में हर्षित नहीं होती और प्रतिकूलता में घृणा नहीं करतीं। विभागरहित, अभ्यासरहित और आदि–अंत से रहित तथा ध्यान करते हुए या नहीं करते हुए, सब अवस्थाओं में समभाव की स्थिति हो, यही सुषुप्त मौन है। अनेक प्रकार के विभ्रमयुक्त संसार के और परमात्मा के तत्त्व को यथार्थ रूप से जानने पर जो संदेहरहित स्थिति बनती है वही सुषुप्त मौन है। 'जो सर्वशून्य, अवलंबनरहित, शांतिस्वरूप, सर्वात्मक तथा सत्ता सामान्यरूप परमात्मा है वह मैं ही हूँ....' इस प्रकार की ज्ञानावस्था को सुषुप्त मौन कहा जाता है।

जाग्रतावस्था में सर्वथा यथायोग्य व्यवहार करते हुए अथवा तमाम व्यवहार छोड़कर समाधि में स्थित जीवन्मुक्त देहयुक्त होते हुए भी सम्पूर्ण निर्मल शांतवृत्ति से युक्त तुरीयावस्था में स्थित और विदेहस्वरूप ही हैं।

यह ज्ञानवानों का नित्य मौन है। इसको 'वेदान्ती मौन' कह सकते हैं। आत्मस्वरूप में, ब्रह्मस्वरूप में जागे हुए बोधवान् ज्ञानी पुरुष खाते–पीते, उठते–बैठते, चलते–फिरते सब कुछ करते हुए भी भली प्रकार समझते हैं किः 'बोला जाता है वाणी से, लिया–दिया जाता है हाथ से, चला जाता है पैर से, संकल्प–विकल्प होते हैं मन से, निर्णय होते हैं बुद्धि से। मैं इन सबको देखनेवाला, अचल, कूटस्थ, साक्षी हूँ। मैंने कभी कुछ किया ही नहीं।'

ज्ञानी बोलते हुए भी नहीं बोलते, लेते हुए भी नहीं लेते, देते हुए भी नहीं देते। भगवान श्रीकृष्ण का आजीवन मौन था, दुर्वासा का मौन था, कबीर का मौन था, रामतीर्थ और रमण महर्षि का मौन था। इन

महापुरुषों ने ठीक से जान लिया था कि हम शरीर, प्राण, वाणी, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि से पृथक आत्मा हैं। ऐसे ज्ञानवान पुरुष सब कुछ करते हुए भी अपने आप में समाहित होते हैं। यही परम मौन है।

हम जब तक परम मौन की प्राप्ति न कर लें तब तक वाचिक मौन रखें, ऐन्द्रिक मौन रखें, काष्ठ मौन रखें। इससे हमें बड़ा लाभ होता है। अनुष्ठान के समय मौन रखने से वाणी–व्यापार द्वारा हमारी शक्ति का जो अपव्यय होता है वह रुक जायेगा और अनुष्ठान सुफलदायी बनेगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ब्रह्मचर्य का पालन

स्त्री–संसर्ग, उनकी चर्चा तथा जहाँ वे रहती हों वह स्थान छोड़ देना चाहिए। ऋतुकाल के अतिरिक्त अपनी स्त्री का भी स्पर्श करना निषिद्ध है। स्त्री साधिकाओं के लिए पुरुषों के सम्बन्ध में भी यही बातें समझनी चाहिए। अनुष्ठान के दिनों में दृढ़ पालन करना अति आवश्यक है। शरीररूपी वृक्ष को हरा–भरा रखनेवाला रस वीर्य है। जीवन में जो कुछ ओज–तेज, हिम्मत, साहस, पराक्रम आदि श्रेष्ठ गुण दिखाई देते हैं वे सब इस वीर्यधारण का ही परिणाम है। ठीक ही कहा है कि:

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।

वीर्यधारण होना जीवन है और वीर्यपात होना मृत्यु है। अनुष्ठान करके जिस जीवनशक्ति को जगाकर उसको भली प्रकार विकसित करके अपने आदर्श को सिद्ध करना है उसी शक्ति को ब्रह्मचर्य के भंग में नष्ट कर देना तो बेवकूफी है। ब्रह्मचर्य के दृढ़ पालन के बिना अनुष्ठान का पूरा लाभ नहीं उठा पायेंगे।

ब्रह्मचर्य–व्रत शरीर को साधना के सुयोग्य बनाता है। तन साथ नहीं देगा तो मन भी ठीक से जप में नहीं लगेगा। कामरहित होने से चित्त साधना में ठीक से गति कर सकता है। काम सताता हो तो भगवान नृसिंह का चिन्तन करने से काम से रक्षा होती है। नृसिंह भगवान ने कामना के पुतले हिरण्यकशिपु को चीर डाला था। भगवान के उग्र रूप का स्मरण–चिन्तन करने से कामावेग शांत हो जाता है।

अनुष्ठान से पहले "यौवन सुरक्षा" पुस्तक का गहरा अध्ययन कर लेना बड़ा हितकारी होगा। ब्रह्मचर्यरक्षा के लिए एक मंत्र भी है:

ॐ नमो भगवते महाबले पराक्रमाय मनोभिलाषितं मनः स्तंभ कुरु कुरु स्वाहा।

रोज दूध में निहार कर २१ बार इस मंत्र का जप करें और दूध पी लें। इससे ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है। स्वभाव में आत्मसात् कर लेने जैसा यह नियम है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल वीर्यरक्षण या मैथुनत्याग तक ही सीमित नहीं है। हाँ, ये आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। फिर भी व्यापक अर्थ में ब्रह्मचर्य का मतलब है कि इन्द्रियों को विषयों से संयमित करके मन को प्रभु में लगाना, चित्त को परमात्मचिन्तन में, ब्रह्मचिन्तन में लगाना, ब्रह्म में विचरण कराना। इसको विद्वान लोग ब्रह्मचर्य मानते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुष्ठान अकेले करो

ब्रह्मचारी अकेला रहता है। अनुष्ठान करने वाला यदि अविवाहित है और सोचे किः 'हाय मैं अकेला हूँ... जीवन में किसी का साथ नहीं मिला.... पति-पत्नी होते तो दोनों मिलकर साथ में धर्म-पुण्य, उपासना-अनुष्ठान करते, कथा-सत्संग में जाते....'

लड़का सोचे किः 'पत्नी मिल जाय तो अकेलापन मिटे।' लड़की सोचे किः 'पति मिल जाय तो अकेलापन मिटे।' नहीं.... जो लोग समझ से रहित हैं, विवेक विचार से रहित हैं उन नादानों को जीवन में अकेलापन खटकता है। वरना, जिनके पास समझ है वे सौभाग्यशाली साधक अपने को एकदम खाली, एकदम अकेला, रूखा महसूस नहीं करते। वे अपने साथ परम चेतना का अस्तित्व महसूस करते हैं, ईश्वर के सान्निध्य की भावना करके तृप्ति-सुख भोगते हैं।

आखिरी दृष्टि से, तत्त्वज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो दूसरा कुछ है ही नहीं। एक ही चैतन्य देव, आत्मदेव, अपना आपा विभिन्न नाम एवं रूप में रमण कर रहा है।

अनुष्ठान करने वाला यदि विवाहित है, गृहस्थ है तो भी अनुष्ठान अकेले ही एकान्त में करना चाहिए। ऐसा नहीं कि पति और पत्नी दोनों साथ में बैठकर भोजन करें। नहीं....

तपः एकत्वम्। तप अकेले करना चाहिए।

पति-पत्नी दोनों अनुष्ठान भले चालू करें लेकिन अलग-अलग। अनुष्ठान साथ में बैठकर करेंगे तो पति को पत्नी का चिन्तन होगा, पत्नी को पति का चिन्तन होगा। इष्टमंत्र का चिंतन, इष्टदेव का चिन्तन, ईश्वर का चिन्तन छूट जायेगा। चित्त को ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित अर्थात् ब्रह्म में विचरण करने वाला बनाना है। इसलिए तुम अकेले रहकर अनुष्ठान करोगे, उपासना करोगे, मौन रहोगे, कौन क्या कर रहा है... इसका चिन्तन छोड़कर पवित्र स्थान में पवित्र रहकर जप-तप करोगे तो तुम्हारे भीतर छुपी हुई ईश्वरीय शक्तियाँ, छुपा हुआ आध्यात्मिक बल, छुपा हुआ इष्ट का प्रभाव प्रकट होने लगेगा। जिसका इष्ट मजबूत होता है उसका अनिष्ट नहीं होता।

अकेलेपन से ऊबो नहीं। परमात्मा सदा हमारे साथ मिले हुए हैं.... इस वास्तविकता की झाँकी जब तक न मिले तब तक हृदय में इस दिव्य भावना का सेवन दृढ़ होकर करते रहो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

वासना का दीया बुझाओ

जो लोग निगुरे हैं, जिन लोगों के चित्त में वासना है उन लोगों को अकेलापन खटकता है। जिनके चित्त में राग, द्वेष और मोह की जगह पर सत्य की प्यास है उनके चित्त में आसक्ति का तेल सूख जाता है। आसक्ति का तेल सूख जाता है तो वासना का दीया बुझ जाता है। वासना का दीया बुझते ही आत्मज्ञान का दीया जगमगा उठता है।

संसार में बाह्य दीया बुझने से अँधेरा होता है और भीतर वासना का दीया बुझने से उजाला होता है। इसलिए वासना के दीये में इच्छाओं का तेल मत डालो।इच्छाओं को हटाते जाओ ताकि वासना का दीया बुझ जाय और ज्ञान का दीया दिख जाय।

वासना का दीया बुझने के बाद ही ज्ञान का दीया जलेगा ऐसी बात नहीं है। ज्ञान का दीया भीतर जगमगा रहा है लेकिन हम वासना के दीये को देखते हैं इसलिए ज्ञान के दीये को देख नहीं पाते।

कुछ सैलानी सैर करने सरोवर गये। शरदपूर्णिमा की रात थी। वे लोग नाव में बैठे। नाव आगे बढ़ी। आपस में बात कर रहे हैं किः "यार ! सुना था किः 'चाँदनी रात में जलविहार करने का बड़ा मज़ा आता है.... पानी चाँदी जैसा दिखता है...' यहाँ चारों और पानी ही पानी है। गगन में पूर्णिमा का चाँद चमक रहा है फिर भी मज़ा नहीं आता है।"

केवट उनकी बात सुन रहा था। वह बोलाः

"बाबू जी ! चाँदनी रात का मजा लेना हो तो यह जो टिमटिमा रहा है न लालटेन, उसको फूँक मारकर बुझा दो। नाव में फानूस रखकर आप चाँदनी रात का मजा लेना चाहते हो? इस फानूस को बुझा दो।"

फानूस को बुझाते ही नावसहित सारा सरोवर चाँदनी में जगमगाने लगा। .....तो क्या फानूस के पहले चाँदनी नहीं थी? आँखों पर फानूस के प्रकाश का प्रभाव था इसलिए चाँदनी के प्रभाव को नहीं देख पा रहे थे।

इसी प्रकार वासना का फानूस जलता है तो ज्ञान की चाँदनी को हम नहीं देख सकते हैं। अतः वासना को पोसो मत। **ब्रह्मचारिव्रते स्थितः**। जैसे ब्रह्मचारी अकेला रहता है वैसे अपने आप में अकेले.... किसी की आशा मत रखो। आशा रखनी ही है तो राम की आशा रखो। राम की आशा करोगे तो तुम आशाराम बन जाओगे। आशा का दास नहीं.... आशा का राम !

आशा तो एक राम की और आश निराश।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

शयन

अनुष्ठान के दिनों में भूमिशयन करो अथवा पलंग से कोमल-कोमल गद्दे के हटाकर उस पर चटाई, कन्तान या कम्बल बिछाकर जप-ध्यान करते-करते शयन करो। साधक को यदि अपना जीवन तेजस्वी बनाना हो, प्रभावशाली बनाना हो, शरीर को नीरोगी रखना हो तो अति कोमल और मोटे गद्दों पर वह शयन न करे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निद्रा-तन्द्रा-मनोराज से बचो

अनुष्ठान में मंत्रजप करते समय नींद आती हो, तन्द्रा आती हो, आलस्य आता हो अथवा मनोराज में खो जाते हो तो अनुष्ठान का पूरा लाभ नहीं पा सकोगे।

निद्रा दो प्रकार की होती हैः स्थूल एवं सूक्ष्म। शरीर में थकान हो, रात्रि का जागरण हो, भोजन में गरिष्ठ पदार्थ लिये हों, ठूँस-ठूँसकर भरपेट खाया हो तो जो नींद आती है वह स्थूल निद्रा है।

गहरी नींद भी नहीं आयी और पूर्ण जाग्रत भी नहीं रहे, जरा सी झपकी लग गई, असावधानी हो गई, माला तो चलती रही यंत्रवत् लेकिन कितनी माला घूमी कुछ ख्याल नहीं रहा। यह सूक्ष्म निद्रा है। इसे तन्द्रा बोलते हैं।

असमय सूक्ष्म निद्रा आने लगे तो उसके कारणों को जानकर उनका निवारण करना चाहिए। पादपश्चिमत्तोनासन, मयूरासन, पद्मासन, चक्रासन आदि आसन शरीर के रोग दूर करते हैं, आरोग्यता प्रदान करते हैं और निद्रा का भी नियंत्रण करते हैं। इन सब आसनों में पादपश्चिमोत्तानासन अत्यधिक लाभदायक है।

सूक्ष्म निद्रा माने तन्द्रा को जीतने के लिए प्राणायाम करने चाहिए। प्राणायाम से शरीर की नाड़ीशुद्धि होती है, रक्त का मल बाहर निकलता है, फेफड़ों का पूरा हिस्सा सक्रिय बनता है, शरीर में प्राणवायु अधिक प्रमाण में एवं ठीक–ठीक प्रकार से फैलता है, ज्ञानतंतु पुष्ट होते हैं, दिमाग खुलता है। शरीर में ताजगी–स्फूर्ति का संचार होता है। इससे तन्द्रा नहीं घेरती।

मनोराज का अर्थ हैः आप कर तो कुछ रहे हैं और मन कुछ और ही सोच रहा है, जाल बुन रहा है। कोई काम करते हैं, मन कहीं और जगह घूमने चला जाता है। हाथ में माला घूम रही है, जिह्वा मंत्र रट रही है और मन कुछ अन्य बातें सोच रहा है, कुछ आयोजन कर रहा है। यह है मनोराज।

एक पुरानी कहानी हैः एक सेठ के घर उनके बेटे की शादी का प्रसंग था। एक मजदूर के सिर पर घी का घड़ा उठवाकर सेठ घर जा रहे थे। आज मजदूर को रोज की अपेक्षा ज्यादा पैसे मिलाने वाले थे। सेठ के वहाँ खुशहाली का प्रसंग था न ! ....तो मजदूर सोचने लगाः

"मैं इन पैसों से मुर्गियाँ लूँगा.... मुर्गियाँ अण्डे देंगी..... अण्डों से बच्चे बनेंगे..... बच्चे मुर्गियाँ बन जायेंगे.... मुर्गियों से अण्डे... अण्डों से मुर्गियाँ... मेरे पास बहुत सारी मुर्गियाँ हो जायेंगी...."

सिर पर घड़ा है। कदम पड़ रहे हैं और मन में मनोराज चल रहा हैः

"फिर मुर्गियाँ बेचकर गाय खरीदूँगा... दूध बेचूँगा और खूब पैसे इकट्ठे हो जायेंगे तब यह सब धंधा छोड़कर किराने की दुकान खोलूँगा... एक बढ़िया विस्तार में व्यापार करूँगा.... शादी होगी.... बाल–बच्चे होंगे... आगे दुकान पीछे मकान.... दुकान पर खूब ग्राहक होंगे... मैं सौदे में व्यस्त होऊँगा.... घर से लड़का बुलाने आयेगाः "पिताजी ! पिताजी ! चलो, माँ भोजन करने के लिए बुला रही है...' मैं गुस्से में कहूँगा की चल हट्...!"

'चल हट्...' कहते ही मजदूर ने मारा हाथ का झटका तो सिर का घड़ा नीचे.... घड़ा फूट गया। घी ढुल गया। मजदूर के भविष्य का सुहावना स्वप्न हवा हो गया।

सेठ आगबबूला होकर तिलमिला उठेः "रे दुष्ट ! यह क्या कर दिया? चल हट्... मेरे सैंकड़ों रूपये का घी बिगाड़ दिया?"

मजदूर बोलाः "सेठजी ! आपका तो केवल घी बिगड़ा लेकिन मेरा तो घर–बार, पुत्र–परिवार, व्यापार–धंधा सब चौपट हो गया।"

यह है मनोराज। आदमी काम कुछ करता है और मन कुछ और कल्पनाओं में घूमता है। सामान्यतया हम किसी कार्य में व्यस्त होते हैं तो मनोराज कम होता है लेकिन जप, ध्यान करने बैठते हैं तो मनोराज हो ही जाता है। उस समय कोई बाह्य क्रिया नहीं होती है, इससे मन अपनी जाल बुनना शुरु कर देता है।

इस मनोराज को हटाने के लिए उच्च स्वर से ॐ का उच्चारण कर लो। सावधानी से मन को देख लो और उससे पूछोः 'अरे मनीराम ! क्या कर रहा है?' ....तो मन कल्पना का जाल बुनना छोड़ देगा। उसे फिर जप में, मंत्र के अर्थ में लगा दो।

संक्षेप में– स्थूल निद्रा को जीतने के लिए आसन, सूक्ष्म निद्रा–तन्द्रा को जीतने के लिए प्राणायाम और मनोराज को जीतने के लिए ॐ का दीर्घ स्वर से जप करना चाहिए। जो लोग सूर्यास्त एवं सूर्योदय के समय सोते हैं वे अपने जीवन का ह्रास करते हैं। बुद्धि पर इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। बुद्धि का सम्बन्ध सूर्य के साथ है और मन का सम्बन्ध चन्द्र के साथ हैं। अतः उनके अनुकूल आचार बनाने से लाभ होता है। जो लोग अनुष्ठान सफल करना चाहते हैं, इष्ट्मंत्र सिद्ध करना चाहते हैं,जीवन में चमकना चाहते हैं, महकना

चाहते हैं उनके लिए ये बातें बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। सन्धिकाल उनके लिए बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। सूर्योदय के १०–१५ मिनट पूर्व व पश्चात्, मध्यान्ह १२बजने के १०–१५ मिनट पूर्व व पश्चात, सूर्यास्त के १०–१५ मिनट पूर्व व पश्चात एवं रात्रि के पौने बारह से सवा बारह बजे के बीच..... इन सन्धिकालों के समय जप करके कुछ मिनटों के लिए तन और मन के परिश्रम से रहित हो जाना चाहिए। जप छोड़कर श्रमरहित स्थिति में आने से अमाप लाभ होता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

स्वच्छता और पवित्रता

तन और मन परस्पर जुड़े हुए हैं। तन का प्रभाव मन पर पड़ता है और मन का प्रभाव तन पर पड़ता है। तन गन्दा होगा तो मन भी प्रफुल्लित नहीं रह सकता। तन पर तामसी वस्त्र होंगे तो मन पर भी तमस् छा जायेगा। अतः जो लोग मैले कपड़े पहनते हैं, रात्रि में पहने हुए कपड़े सुबह में नहाने के बाद फिर से पहन लेते हैं उन लोगों को सावधान हो जाना चाहिए। वस्त्र धुले हुए पहनने चाहिए।

एक आदमी को मैंने देखा कि बेचारा दया का पात्र है! दर–दर की ठोकरें खा रहा है। इधर गया.... उधर गया लेकिन कहीं ठहरने को नहीं मिला। मैंने उसके व्यक्तित्व को जाँचा, उसकी दयाजनक स्थिति का कारण खोजा तो पता चला कि उसके कपड़े मैले कुचैले होने के कारण ऐसा हो रहा था।

मुँह जूठा, दाँत मैले और कपड़े गन्दे, ये तुम्हारे ओज को कम कर देते हैं।

जो वस्त्र पहन कर शौच जाते हो, फिर वे वस्त्र स्नान के बाद कदापि नहीं पहनने चाहिए। वे वस्त्र उसी समय स्नान के साथ धुल जाने चाहिए, चाहे बिना साबुन के ही पानी में डुबो दो। वस्त्र चाहे सादे हों लेकिन धोये हुए हों, मैले–मैले, गन्दे–गन्दे, पसीनेवाले या बासी नहीं हों।

लघुशंका करते वक्त साथ में पानी होना जरूरी है। लघुशंका के बाद इन्द्रिय पर ठण्डा पानी डालकर धो लो, हाथ–पैर भी धो लो और कुल्ला कर लो। कुछ खाओ–पिओ तो भी कुल्ला करके मुखशुद्धि कर लो।

दाँत भी स्वच्छ और श्वेत रहने चाहिए। गन्दे, पीले दाँत हमारे व्यक्तित्व को, हमारे तेज को धुँधला बनाते हैं। सुबह में और भोजन के बाद भी दाँत अच्छा तरह साफ करने चाहिए। महीने में एकाध बार रात्रि को सोते समय नमक और सरसों का तेल मिलाकर दाँतों को मलना चाहिए। फिर दाँत बुढ़ापे में भी सड़ेंगे नहीं।

जप करने के लिए आसन पर बैठकर सबसे पहले शुद्धि की भावना के साथ हाथ धोकर पानी के तीन आचमन ले लो। जप के अन्त में भी तीन आचमन ले लो। जप करते वक्त छींक आ जाये, जम्हाई आ जाय, खाँसी आ जाय, अपानवायु छूटे तो यह अशुद्धि है। वह माला नियत संख्या में नहीं गिननी चाहिए। आचमन करके शुद्ध होने के बाद वह माला फिर से करनी चाहिए। आचमन के बदले ॐ संपुट के साथ गुरुमंत्र सात बार दुहरा दिया जाय तो भी शुद्धि हो जायेगी। जैसे, मंत्र हैं 'नमः शिवाय' तो सात बार ॐ नमः शिवाय ॐ' दुहरा देने से पड़ा हुआ विघ्न निवृत हो जायेगा।

जब तुम जप कर रहे हो और मल–मूत्र विसर्जन की हालत हो जाय तो उसे रोकना नहीं चाहिए। 'जप पूरा करके फिर उठूँगा....' ऐसा सोचकर जप चालू रखोगे तो यह ठीक नहीं है। कुदरती हाजत को रोकना नहीं चाहिए। अन्यथा शरीर में उसकी पीड़ा होगी तो मन मल–मूत्र का चिन्तन करेगा, ईश्वर का चिन्तन छूट जायेगा। माला यंत्रवत् घूमती रहेगी, समय बीत जायेगा और उस समय का जप फलदायी नहीं रहेगा। अतः ऐसे प्रसंग पर माला करना छोड़कर कुदरती हाजत को निपटा लो। शौच गये हो तो स्नानादि से शुद्ध होकर स्वच्छ वस्त्र

पहनकर और यदि लघुशंका करने गये हो तो केवल हाथ, पैर धोकर कुल्ला करके शुद्ध पवित्र हो जाओ। फिर से माला का प्रारम्भ करके बाकी रही हुई जप संख्या पूर्ण करो।

लघुशंका करके तुरन्त पानी न पियो और पानी पीकर तुरन्त लघुशंका न करो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

चित्त के विक्षेप का निवारण करो

अनुष्ठान के दिनों में शरीर–वस्त्रादि शुद्ध रखने ही चाहिए, साथ में चित्त भी प्रसन्न, शांत और निर्मल रखना आवश्यक है। जिन कारणों से चित्त में क्षोभ पैदा हो उन कारणों का निवारण करते रहना चाहिए। रास्ते में कहीं मल पड़ा है, विष्टा पड़ी है, किसी का थूक–बलगम पड़ा है, कोई गन्दी चीज पड़ी है तो उसे देखकर हमारे चित्त में क्षोभ पैदा होता है। यह क्षोभ यदि बढ़ जाय तो स्वभाव खिन्न हो जाय। चित्त में क्षोभ के संस्कार घुस जाय तो स्वभाव विकृत हो जायँ। फिर प्रसन्नता के बदले व्यवहार में चिड़चिड़ापन व्यक्त होने लगे।

मदालसा ने अपने पुत्र अलरक आदि को उपदेश देते हुए कहा था कि व्यक्ति को अपना मल भी नहीं देखना चाहिए। मल देखकर चित्त में अहोभाव थोड़े ही हो जागेगा ? क्षोभ ही जागेगा। कई बच्चे नादानी में अपने मल से ही खेलते हैं। माँ बाप को लगता है किः 'बच्चे हैं.... खेलते हैं। कोई बात नहीं।' उन बेचारों को पता नहीं कि, यह बात तो छोटी सी दिखती है लेकिन वे बच्चे आगे चलकर इन संस्कारों के कारण जीवन में कितने खिन्न हो सकते हैं, कितने अशांत हो सकते हैं !

जैसे गन्दी चीज को देखकर चित्त क्षुभित होता है वैसे ही अशांत व्यक्ति, शूद्र, महा चाण्डाल, दुष्कृत्य करने वाले दुष्ट को देखकर भी चित्त क्षुभित होता है। चील, कौआ, गीध आदि जैसे गन्दगी खानेवाले जीवों को देखकर भी चित्त पर ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। ऐसे प्रसंगो पर चित्त का क्षोभ मिटाने के लिए सूर्य, चन्द्र या अग्नि का दर्शन कर लो, संत महात्मा, सदगुरु का दर्शन–स्मरण कर लो, भगवान का उच्चारण कर लो, भावना से ब्रह्म–परमात्मा का चिन्तन कर लो। इससे चित्त की खिन्न दशा चली जाएगी। चित्त प्रशांत होने के काबिल बन जायेगा।

ज्ञानी के लिए तो कौवा–कुत्ता, शूद्र–चाण्डाल, हेय–त्याज्य सब ब्रह्मस्वरूप है। जो स्वरूप में जाग गये हैं उन बोधवान महापुरुषों के लिए सब खेलमात्र है। लेकिन उनके पदचिह्नों का अनुकरण, अनुसरण हो सके, उनकी अनुभूतियाँ अपनी अनुभूतियाँ बन सकें, जीवन की गहराई को और ज्ञान की ऊँचाई को छू सके ऐसे अन्तःकरण का निर्माण करने हेतु साधक के लिए ये चीजें विचारणीय एवं आचरणीय हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

शक्ति का संरक्षण करो

नाव नदी पार करने के लिए है, सिर पर उठाने के लिए नहीं है। नाव में बैठकर नदी पार करनी है, नाव सिर पर रखकर नदी में उतरना नहीं है।

मंत्र एक नाव है। मंत्र का उपयोग किया जाय। ऐसा न हो कि मंत्र इस ढंग से जपें कि रात को नींद ही न आये। जो लोग ठीक से खाते–पीते नहीं, फल–दूध आदि का उपयोग नहीं करते, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं

करते और चिल्ला–चिल्ला कर मंत्र जपते हैं तो उनके ज्ञानतंतु क्षुभित हो जाते हैं, आँखें अधिक चौड़ी हो जाती हैं। ऐसा हो जाये तो समझ लेना कि कुछ–न–कुछ 'ढज्ग्च्ळत्ब्फ' (प्रतिक्रिया) हो गया है मंत्र का। दारू पीने से भी आँखें अधिक चौड़ी हो जाती हैं। आँखों के गोलकों से शक्ति क्षीण हो जाती है। जो लोग आँखें फाड़–फाड़कर देखते हैं उनकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है। आँखें बंद करके जप करते हैं उनको मनोराज हो जाने की संभावना रहती है।

मंत्रजप एवं ध्यान के समय अर्धोन्मिलित नेत्र होने चाहिए। अर्धमूँदित नेत्र होने से ऊपर की शक्ति नीचे की शक्ति से और नीचे की शक्ति ऊपर की शक्ति से मिल जायेगी, विद्युत का वर्तुल पूर्ण हो जायेगा। शक्ति बाहर क्षीण नहीं होगी।

हम जब बस में या ट्रेन में यात्रा करते हैं तब खिड़की के पास बैठकर बाहर देखते रहते हैं तो थक जाते हैं और झपकियाँ लेने लगते हैं। चलती गाड़ी में आँखें फाड़–फाड़ कर खिड़की से बाहर देखने से आँखों के द्वारा शक्ति के तरंग बाहर निकल जाते हैं। इससे थकान जल्दी लगती है।

ऐसे ढंग से नहीं बोलो कि अपनी शक्ति क्षीण हो जाये। ऐसा मनोराज न होने दो कि आपका मन शक्तिहीन हो जाय। ऐसे निर्णय मत करो कि जिससे कहीं फँसो और झूठ बोलना पड़े।

अनुष्ठान के दिनों में जीवन को बहुत मूल्यवान समझकर जियो। साथ–ही–साथ, दूसरों को तुच्छ भी नहीं समझना है। अपने जीवन को, अपने जीवन की शक्तियों को मूल्यवान समझकर परम मूल्यवान् जो परमात्मा है उनके चरणों में लगाना है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मंत्र में दृढ़ विश्वास

मंत्रजप में दृढ़ विश्वास होना चाहिए। **विश्वासो फलदायकः।**

'यह मंत्र बढ़िया है कि वह मंत्र बढ़िया है? इस मंत्र से लाभ होगा कि नहीं होगा?' – ऐसा सन्देह करके यदि मंत्रजप किया जायेगा तो सौ प्रतिशत परिणाम नहीं आयेगा।

संशय सबको खात है, संशय सबका पीर।
संशय की जो फाकी करे, उसका नाम फकीर॥

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अप्रतिहत प्रज्ञा को जगाओ

छोटी–छोटी बातों में चित्त की उलझन बुद्धि की शक्ति को नष्ट कर देती है। जरा–जरा बात में हम चकित हो जायें तो उससे बुद्धि कमजोर हो जाती है। जगत की छोटी–मोटी घटना से हम प्रभावित हो जाते हैं, इंग्लैण्ड–अमेरिका से, जर्मनी–जापान से आकर्षित हो जाते हैं कि उन लोगों ने यह आविष्कार किया, वह आविष्कार किया, यह बनाया, वह बनाया.....

प्रकृति के द्वन्द्वों से हम क्षुब्ध हो जाते हैं। ठण्डी–गर्मी, भूख–प्यास हमें असह्य जान पड़ती है। हमें अपनी सहनशक्ति बढ़ानी चाहिए। श्रीकृष्ण ने कहा है :

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

'हे कुन्तीपुत्र ! सर्दी–गर्मी और सुख–दुःख को देने वाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो उत्पत्ति–विनाशशील और अनित्य हैं, इसलिए हे भारत ! इनको तू सहन कर।'

फिर आगे कहते हैं–

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

'क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! दुःख–सुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष के योग्य होता है।'

(भगवदगीताः २.१४.१५)

सुख–दुःखादि से जो प्रभावित नहीं होता, उसकी बुद्धि जल्दी ऋतंभरा प्रज्ञा हो जाती है। प्रशान्तात्मा होने से बुद्धि ऋतंभरा प्रज्ञा होती है। आप अपने चित्त को स्वस्थ रखो। परिस्थितियों के बहाव में अपने को मत बहने दो। ऐसे सावधान रहोगे तो अनुष्ठान के फल का अनुभव हस्तामलकवत् कर सकोगे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

इष्टशरण से अनिष्ट दुर्बल होता है

आश्रम में आने वाले एक प्रोफेसर ने बताया थाः "हमारे पड़ोस में एक बड़ा दुष्ट आदमी था। बड़ा अनिष्ट करता था। एक दिन मेरी पत्नी के साथ उसका झगड़ा हुआ। उस समय मैं पूजा कर रहा था। हर रोज ग्यारह माला जपने का मेरा नियम था। झगड़ा बढ़ गया था। सौ–दौ सौ आदमियों का हल्ला–गुल्ला सुनाई पड़ रहा था। मेरी पत्नी बेचारी उस दुष्ट से कैसे निपटे? एक मन कह रहा था किः "उठूँ.... उसको ठीक कर दूँ जाकर।" दूसरा मन कह रहा था किः 'नहीं.... इष्टमंत्र है, पहले वह पूरा करूँ।' मंत्रजप पूरा करके गया तो ऐसा कुछ हुआ, ऐसा जोश आया.... अजनबी जैसा... कि सारी भीड़ एक तरफ हो गई। उस आदमी को एक तरफ धक्का दे दिया और सदा के लिए झगड़ा निपट गया।

यदि मंत्र छोड़कर ऐसे ही जाता और बड़बड़ाने लगता तो हो सकता है, मैं फँस जाता, झगड़ा बढ़ जाता। कोई दुष्परिणाम भी आ सकता था।"

यदि हम अपने इष्टमंत्र का जप कर रहे हैं तो हमारा अनिष्ट थोड़ी मेहनत से या बिना मेहनत के खत्म हो जायेगा। इष्ट मजबूत होता है तो अनिष्ट नहीं होता। इष्टों का भी इष्ट है परमात्मा। यदि परमात्मा के साथ हमारा मजबूत नाता है तो हम मजबूत हैं।

विधिसहित, भाव एवं विचारसहित, स्वच्छता एवं पवित्रतासहित, साधना का संरक्षण करते हुए यदि अनुष्ठान किया जाय तो इष्टमंत्र सिद्ध हो जाता है। जीवन में दो ही घटनाएं होती हैं– या तो हमारा भला होता है या बुरा, इष्ट होता है अथवा अनिष्ट।

जिसका इष्ट मजबूत होता है उसका अनिष्ट नहीं हो सकता। अनिष्ट उसका हो सकता है जिसका इष्ट कमजोर होता है। हमारा इष्ट मजबूत होता है तो शत्रु भी हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकता और अनिष्ट मजबूत होता है तो मित्र भी हमसे शत्रुता करने लगते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

छत्रपति शिवाजी की रक्षा

समर्थ रामदास के शिष्य छत्रपति शिवाजी मुगलों के साथ टक्कर ले रहे थे। शूरवीर शिवाजी से खुलेआम मुठभेड़ करने में असमर्थ मुगलों ने एकान्त में शिवाजी को खत्म करने के लिए मैली विद्या का उपयोग करके षड्यंत्र रचा। एक मुगल किसी तंत्र-मंत्र के बल से सिपाहियों को चकमा देकर विघ्न-बाधाओं को हटाकर, शिवाजी जहाँ आराम कर रहे थे उस कमरे में पहुँच गया। उसने म्यान से तलवार निकालकर वार करने के लिए ज्यों ही हाथ उठाया कि किसी अदृश्य शक्ति ने उसका हाथ पकड़ लिया। मुगल को हुआ किः 'मैं सबकी नजर से बचकर टोना-टोटका विद्या के बल से यहाँ तक पहुँचने में सफल हो गया तो अब आखिरी मौके पर कौन मुझे रोक रहा है?'

उसे तुरन्त जवाब मिला किः 'रक्षकों की नजर से बचाकर तेरा इष्ट तुझे यहाँ तक ले आया तो शिवाजी का इष्ट भी शिवाजी को बचाने के लिए मौजूद है।'

शिवाजी का इष्ट उस मुगल के इष्ट से सात्त्विक था इसलिए शत्रु के बदइरादे निष्फल हो गये। शिवाजी का संरक्षण हो गया।

जिसका इष्टमंत्र जितना सिद्ध होता है, इष्ट जितना प्रसन्न होता है, जितना प्रभावशाली होता है उसकी उतनी अधिक रक्षा होती है। इष्टों में इष्ट, सबका इष्ट, सारे इष्टों का बाप हमारा आत्मदेव है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

उपासना का फल

मंत्र तीन प्रकार के होते हैं- साबरी मंत्र, तांत्रिक मंत्र और वैदिक मंत्र। वैदिक मंत्र में पेटा प्रकार होते हैं।

साबरी मंत्र सिद्धियाँ देते हैं, तांत्रिक मंत्र तांत्रिक चमत्कार दिखाते हैं और वैदिक मंत्र हमें आत्मशांति प्रदान करते हैं।

वैदिक मंत्रों से रिद्धि-सिद्धियाँ उपलब्ध होती हैं। उसके द्वारा भोग और मोक्ष प्राप्त होते हैं, जबकि साभरी एवं तांत्रिक मंत्रों के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति असंभव है। उनसे ऐहिकर सफलता और भोग प्राप्त होता है किन्तु श्रेष्ठ साधक उसमें उलझता नहीं। वह तो सिद्धियों के आधारस्वरूप अपने आत्मा में, अपने ब्रह्मस्वरूप में जाग जाता है।

इन वैदिक मंत्रों के पाँच इष्टदेव हैं- श्री गणपति, श्री शिव, श्री विष्णु, श्री सूर्य और भगवती अम्बा। इन पाँचों में से किसी भी देव की आराधना कोई ईमानदारी से करे, श्रद्धा-भक्ति से उनकी उपासना करे तो उन देवों के मंत्रजाप से, दर्शन से, उन पर की हुई श्रद्धा-भावना से उसकी भीतर की योग्यता बढ़ जाती है और ये देव उसे किसी-न-किसी जागे हुए ब्रह्मज्ञानी सदगुरुदेव के पास भेज देते हैं। कभी-न-कभी, किसी-न-किसी जन्म में हमने इन पाँचों में से किसी की पूजा की होगी, आराधना-अर्चना की होगी तो उस पुण्य के बल से हम ब्रह्मज्ञानी गुरु के पास पहुँच जायेंगे। रामकृष्णदेव ने शक्ति की उपासना की थी, भगवती काली की उपासना की थी। उनको ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु श्री तोतापुरी महाराज घर बैठे आ मिले।

ईश्वरोपासना, आराधना, श्रद्धा–भक्ति का पुण्य हमें अंतर्यामी आत्मदेव के साथ मिला दें ऐसे सदगुरु की प्राप्ति करा देता है। हमने यदि ऐसी कोई उपासना–आराधना नहीं की है, हममें श्रद्धा–भक्ति नहीं है और हम पर कायदा लगाया जाय किः 'तुम ब्रह्मज्ञानी संत के दर्शन करो अन्यथा हजार रुपये दण्ड किया जायेगा...' तो हम उनके दर्शन तो करेंगे लेकिन उन दर्शन से, उनके सान्निध्य से शांति और आनन्द का एहसास नहीं कर सकते। 'ठीक है... चलो, हाजिरी भरवाकर आ जायें....' जैसे कार्यालयों में कुछ कामचोर कर्मचारी लोग हाजिरी भरवाकर इधर–उधर खिसक जाते हैं ऐसे ही हम लोग संत के दर्शन करने के लिए खिंचकर चले आयेंगे और दर्शन करके, सत्संग सुनकर आनन्दित हो जायेंगे। हमारे पुण्यों में कमी होगी तो हमें संत के सान्निध्य का पूरा लाभ नहीं मिल पायेगा। संत का सान्निध्य में हमारी रूचि है तो समझो हमारे पुण्य फले हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

दीक्षामात्र से महापातक का नाश

मंत्रदीक्षा से हमारी साधना का काफी प्रतिशत अंश पूरा हो जाता है। मंत्र में चैतन्य होता है।

काशी में एक ब्रह्मचारी ब्राह्मण युवक पढ़ाई पूर्ण करके संसार रचना चाहता था। धन था नहीं। उसने गायत्री मंत्र का अनुष्ठान किया। फिर दूसरा किया... तीसरा किया। दिन–रात वह लगा रहता था। छः महीने में एक अनुष्ठान पूरा होता था। एक अनुष्ठान में चौबीस लाख मंत्रजप। बारह साल में ऐसे तेईस अनुष्ठान उसने किये लेकिन कुछ हुआ नहीं, धन मिला नहीं।

उसने चौबीस साल की उम्र तक विद्याभ्यास किया था। बारह साल अनुष्ठान करने में बीत गये। छत्तीस साल की उम्र हो गई। सोचा किः 'अब क्या शादी करें? धन यदि मिल भी गया, शादी भी कर ली तो दो–पाँच साल में बच्चा होगा। हम जब ४०–५० साल के होंगे तब बच्चा होगा एक साल का। हम जब बूढ़े होंगे, मृत्यु के करीब होंगे तब बच्चे का क्या होगा? इस शादी से कोई फायदा नहीं।'

उस सज्जन ने शादी का विचार छोड़कर संन्यास ले लिया। संन्यास की दीक्षा लेकर जब तर्पण करने लगा और गायत्री मंत्र के जप का प्रारंभ किया तो प्रकाश.... प्रकाश.... दिखने लगा। उस प्रकाशपुंज में गायत्री माँ प्रकट हुई और बोलीं– "वरं ब्रूयात। वर माँग।'"

उसने कहाः "माता जी! वर माँगने के लिए तो तेईस अनुष्ठान किये। 'धनवान् भव... पुत्रवान् भव.... ऐश्वर्यवान् भव...' ऐसा वरदान माँगने के लिए तो सब परिश्रम किया था। अब संन्यासी हो गया। वरदान की कोई जरूरत नहीं रही। इच्छाओं का ही त्याग कर दिया। अब आप आयीं तो क्या लाभ ? माताजी! आप पहले क्यों प्रकट नहीं हुई?"

ये सज्जन थे श्री विद्यारण्यस्वामी, जिन्होंने संस्कृत में 'पंचदशी' नामक ग्रंथ की रचना की है। उसी 'पंचदशी' की गुजराती भाषा में टीका बिलखावाले श्री नथुराम शर्मा ने की है।

श्री विद्यारण्यस्वामी ने पूछाः "माँ! आपने क्यों इतनी देर की?"

माँ बोलीः "तुम्हारे अगले जन्मों के चौबीस महापातक थे। तुम्हारे एक–एक अनुष्ठान से वह एक–एक महापातक कटता था। इसलिए ऐहिक जगत में अनुष्ठान का जो प्रभाव दिखना चाहिए वह नहीं दिखा। मैं यदि प्रकट भी हो जाती तो तुम मुझे नहीं देख सकते, नहीं झेल पाते। एक–एक करके तेईस अनुष्ठान से तेईस महापातक कट गये। संन्यास की दीक्षा ले ली तो चौबीसवाँ महापातक दीक्षा लेते ही कट गया और अब मंत्र को प्रथम बार जपते ही मैं आ गई।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मलिन तत्त्वों से रक्षण

मंत्र निश्चित रूप से अपना काम करते हैं। जैसे, पानी में कंकड़ डालते हैं तो उसमें वर्तुलाकार तरंग उठते हैं वैसे ही मंत्रजप से हमारी चेतना में आध्यात्मिक तरंग उत्पन्न होते हैं। सूक्ष्म रूप से हमारे इर्द–गिर्द एक प्रकाशित तेजोवलय का निर्माण होता है। सूक्ष्म जगत में उसका प्रभाव पड़ता है। मलिन तुच्छ चीजें उस तेजोमण्डल के कारण हमारे पास नहीं आ सकतीं।

'श्री मधुसूदनी टीका' श्रीमदभगवदगीता की मशहूर एवं महत्त्वपूर्ण टीकाओं में से एक है। इसके रचयिता श्री मधुसूदन सरस्वती संकल्प करके जब लेखनकार्य के लिए बैठे ही थे कि एक मस्त परमहंस संन्यासी एकाएक द्वार खोलकर भीतर आये और बोलेः

"अरे मधुसूदन! तू गीता पर टीका लिखता है तो गीताकार से मिला भी है कि ऐसे ही कलम उठाकर बैठ गया है? भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन किये हैं कि ऐसे ही उनके वचनों पर टीका लिखने लग गया?"

श्री मधुसूदनजी तो थे वेदान्ती, अद्वैतवादी। वे बोलेः "दर्शन तो नहीं किये। निराकार ब्रह्म–परमात्मा सबमें एक है। श्रीकृष्ण के रूप में उनका दर्शन करने का हमारा प्रयोजन भी नहीं है। हमें तो केवल उनकी गीता का अर्थ स्पष्ट करना है।"

"नहीं.... पहले उनके दर्शन करो फिर उनके शास्त्र पर टीका लिखो। लो यह मंत्र। छः महीने इसका अनुष्ठान करो। भगवान प्रकट होंगे। उनसे मिल–जुलकर फिर लेखनकार्य का प्रारंभ करो।"

मंत्र देकर बाबाजी चले गये। श्री मधुसूदनजी ने अनुष्ठान चालू किया। छः महीने पूरे हो गये लेकिन श्रीकृष्ण के दर्शन न हुए। 'अनुष्ठान में कुछ त्रुटि रह गई होगी...' ऐसा सोचकर उन्होंने दूसरे छः महीने में दूसरा अनुष्ठान किया फिर भी श्रीकृष्ण आये नहीं।

श्री मधुसूदन के चित्त में ग्लानि हो गई। सोचा किः 'किसी अजनबी बाबाजी के कहने से मैंने बारह मास बिगाड़ दिये अनुष्ठानों में। कहाँ तो सबमें ब्रह्म माननेवाला मैं अद्वैतवादी और कहाँ 'हे कृष्ण... हे भगवान... दर्शन दो... दर्शन दो...' ऐसे मेरा गिड़गिड़ाना? जो श्रीकृष्ण का आत्मा है वही मेरी आत्मा है। उसी आत्मा में मस्त रहता तो ठीक रहता। श्रीकृष्ण आये नहीं और पूरा वर्ष भी चला गया। अब क्या टीका लिखना ?"

वे ऊब गये। 'मूड ऑफ' हो गया। अब न टीका लिख सकते हैं न तीसरा अनुष्ठान कर सकते हैं। चले गये यात्रा करने को तीर्थ में। वहाँ पहुँचे तो सामने से एक चमार आ रहा था। उस चमार ने इनको पहली बार देखा और इन्होंने भी चमार को पहली बार देखा। चमार ने कहाः

"बस, स्वामीजी! थक गये न दो अनुष्ठान करके?"

श्रीमधुसूदन स्वामी चौंके ! सोचाः "अरे मैंने अनुष्ठान किये, यह मेरे सिवा और कोई जानता नहीं। इस चमार को कैसे पता चला?"

वे चमार से बोलेः "तेरे को कैसे पता चला?"

"कैसे भी पता चला। बात सच्ची करता हूँ कि नहीं ? दो अनुष्ठान करके थककर आये हो। ऊब गये, तभी इधर आये हो। बोलो, सच कहता हूँ कि नहीं?"

"भाई ! तू भी अन्तर्यामी गुरु जैसा लग रहा है। सच बता, तूने कैसे जाना ?"

"स्वामी जी ! मैं अन्तर्यामी भी नहीं और गुरु भी नहीं। मैं तो हूँ जाति का चमार। मैंने भूत को वश किया है। मेरे भूत ने बतायी आपके अन्तःकरण की बात।"

"भाई ! देख.... श्रीकृष्ण के तो दर्शन नहीं हुए, कोई बात नहीं। प्रणव का जप किया, कोई दर्शन नहीं हुए। गायत्री का जप किया, दर्शन नहीं हुए। अब तू अपने भूतड़े का ही दर्शन करा दे, चल।"

"स्वामी जी ! मेरा भूत तो तीन दिन के अंदर ही दर्शन दे सकता है। ७२ घण्टे में ही वह आ जायेगा। लो यह मंत्र और उसकी विधि।"

श्री मधुसूदन स्वामी विधि में क्या कमी रखेंगे! उन्होंने विधिसहित जाप किया। एक दिन बीता..... दूसरा बीता..... तीसरा भी बीत गया और चौथा चलने लगा। ७२ घण्टे तो पूरे हो गये। भूत आया नहीं। गये चमार के पास। बोलेः "श्री कृष्ण के दर्शन तो नहीं हुए तेरा भूत भी नहीं दिखता?"

"स्वामी जी! दिखना चाहिए।"

"नहीं दिखा।"

"मैं उसे रोज बुलाता हूँ, रोज देखता हूँ। ठहरिये, मैं बुलाता हूँ, उसे।" वह गया एक तरफ और अपनी विधि करके उस भूत को बुलाया, बातचीत की और वापस आकर बोलाः

"बाबा जी ! वह भूत बोलता है कि मधुसूदन स्वामी ने ज्यों ही मेरा नाम स्मरण किया, 'डायल' का पहली ही नंबर घुमाया, तो मैं खिंचकर आने लगा। लेकिन उनके करीब जाने से मेरे को आग...आग... जैसा लगा। उनका तेज मेरे से सहा नहीं गया। उन्होंने ॐ का अनुष्ठान किया है तो आध्यात्मिक ओज इतना बढ़ गया है कि हम जैसे म्लेच्छ उनके करीब खड़े नहीं रह सकते। अब तुम मेरी ओर से उनको हाथ जोड़कर प्रार्थना करना कि वे फिर से अनुष्ठान करें तो सब प्रतिबन्ध दूर हो जायेंगे और भगवान श्रीकृष्ण मिलेंगे। बाद में जो गीता की टीका लिखेंगे। वह बहुत प्रसिद्ध होगी।"

श्री मधुसूदन जी ने फिर से अनुष्ठान किया, भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन हुए और बाद में भगवदगीता पर टीका लिखी। आज भी वह 'श्री मधुसूदनी टीका' के नाम से जग प्रसिद्ध है।

जिसको गुरुमंत्र मिला है और ठीक से उसका जप किया है वह कितने भी भयानक स्मशान से गुजर जाये, कितने भी भूत-प्रेतों के बीच चला जाय तो भूत-प्रेत उस पर हमला नहीं कर सकते, डरा नहीं सकते।

प्रायः उन निगुरे लोगों को भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी इत्यादि सताते हैं जो लोग अशुद्ध खाते हैं, प्रदोषकाल में भोजन करते हैं, प्रदोषकाल में मैथुन करते हैं। जिसका इष्टदेव नहीं, इष्टमंत्र नहीं, गुरुमंत्र नहीं उसके ऊपर ही भूत-प्रेत का प्रभाव पड़ता है। जो सदगुरु के शिष्य होते हैं, जिनके पास गुरुमंत्र होता है, भूत-प्रेत उनका कुछ नहीं कर सकते।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अद्वैत में सब मतों का पर्यावसान

धर्म के नाम पर झगड़े हो रहे हैं। सब लोग अलग-अलग देव को मान रहे हैं। सब देवों के अन्दर जो आत्मदेव हैं उनको यदि सब लोग मानने लग जायें तो धर्म के नाम पर जो खुवारियां होती हैं वे सब बन्द हो जायें। लोग यदि वेदान्तिक ईश्वर को मानने लग जायें तो सब झगड़े खत्म हो जायें।

एक कहेगाः 'मेरा देव बड़ा।' दूसरा कहेगाः 'मेरा देव बड़ा।' तीसरा कहेगाः 'विष्णु जी बड़े।' चौथा कहेगाः 'हनुमानजी बड़े।' पाँचवा कहेगाः 'ईसा बड़े।' छठा कहेगाः 'मोहम्मद बड़े।' ...लेकिन मोहम्मद के पहले

जो चैतन्य था, ईसा के पहले जो चैतन्य था, जो चैतन्य हमारे देवी देवता में है वही चैतन्य आपमें और हममें चमक रहा है। यह समझ लें तो झगड़ा शांत हो जाता है। लेकिन ईसाई बोलता हैः 'ईसा बड़े।' श्रीकृष्ण वाले बोलते हैं– 'श्रीकृष्ण बड़े।' श्री राम वाले बोलते हैं ? श्रीराम बड़े।' वास्तविकता जानने वाले ज्ञानी बोलते हैं–

एक नूर ते सब जग उपजा कौन भले कौन मन्दे?

एक ही परमात्मा है। न कोई बड़ा है न कोई छोटा है। बड़े–में–बड़ा जो आत्मा है उसे जाननेवाले को मेरा नमस्कार है ! ॐ...ॐ....ॐ....

एक ईश्वरवाद ने अनेक ईश्वर स्वीकार कर लिए हैं। उसका कारण यह हैः ईश्वर तो एक ही है लेकिन जिस–जिस दिल में वह प्रकट हुआ है वह भी ईश्वरतुल्य है, उसका आदर किया जाता है।

सब घट मेरा साँईयाँ, खाली घट न कोय।
बलिहारी वा घट की, जा घट परगट होय॥
कबीरा कुआँ एक है, पनिहारी अनेक।
न्यारे न्यारे बर्तनों में, पानी एक का एक॥

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अखण्ड आत्मदेव की उपासना

भगवान शंकर श्री वशिष्ठ मुनि से कहते हैं–

"हे ब्राह्मण ! जो उत्तम देवार्चन हैं और जिसके किये से जीव संसारसागर से तर जाता है, सो सुनो। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ! पुण्डरीकाक्ष विष्णु देव नहीं और त्रिलोचन शिव भी देव नहीं। कमल से उपजे ब्रह्मा भी देव नहीं और सहस्रनेत्रइन्द्र भी देव नहीं। न देव पवन है, न सूर्य है न अग्नि, न चन्द्रमा है, न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न तुम हो, न मैं हूँ। अकृत्रिम, अनादि, अनन्त और संवितरूप ही देव कहाता है। आकारादिक परिच्छिन्नरूप हैं। वे वास्तव में कुछ नहीं। एक अकृत्रिम, अनादि चैतन्यस्वरूप देव है। वही 'देव' शब्द का वाचक है और उसी का पूजन पूजन है। जिससे यह सब हुआ है और सत्ता शांत, आत्मरूप है, उस देव को सर्वत्र व्याप्त देखना ही उसका पूजन है। जो उस संविततत्त्व को नहीं जानते, उनके लिए साकार की अर्चना का विधान है। जैसे, जो पुरुष योजनपर्यन्त नहीं चल सकता, उसको एक कोस–दो कोस चलना भी भला है, वैसे ही जो पुरुष अकृत्रिम देव की पूजा नहीं कर सकता उसका साकार को पूजना भी भला है। जो परिच्छिन्न (खण्डित) की उपासना करता है, उसको फल भी परिच्छिन्न (खण्डित) प्राप्त होता है और जो अकृत्रिम आनन्दस्वरूप अनन्त देव की उपासना करता है, उसको वही परमात्मारूपी फल प्राप्त होता है। हे साधो ! अकृत्रिम फल त्यागकर जो कृत्रिम को चाहते हैं वे ऐसे हैं जैसे कोई मन्दार वृक्ष के वन को त्यागकर कंटक के वन को प्राप्त हो।

वह देव कैसा है, उसकी पूजा क्या है और कैसे होती है, सुनो।

बोध, साम्य और शम ये तीन फूल हैं। 'बोध' सम्यक ज्ञान का नाम है, अर्थात् आत्मतत्त्व को ज्यों–का–त्यों जानना। 'साम्य' सबमें पूर्ण देखने को कहते हैं और शम का अर्थ है चित्त को निवृत्त करना और आत्मतत्त्व से भिन्न कुछ न देखना। इन्हीं तीनों फूलों से चिन्मात्र शुद्ध देव शिव की पूजा होती है, आकार की अर्चना से अर्चा नहीं होती।

चिन्मात्र आत्मसंवित् का त्याग कर अन्य जड़ की जो अर्चना करते हैं, वे चिरकाल पर्यन्त क्लेश के भागी होते हैं। हे मुनि ! जो ज्ञातेज्ञेय पुरुष हैं वे आत्म ध्यान से भिन्न पूजन–अर्चन को बालक की क्रीडा–सा मानते हैं। आत्मा भगवान एक देव है। वही शिव और परम कल्याणरूप है। सर्वदा ज्ञान–अर्चना से उसकी पूजा करो, और कोई पूजा नहीं है। पूज्य, पूजक और पूजा इस त्रिपुटी से आत्मदेव की पूजा नहीं होती।

यह सब विश्व केवल परमात्मरूप है। परमात्माकाश ब्रह्म ही एक देव कहाता है। उसी का पूजन सार है और उसी से सब फल प्राप्त होते हैं। वह देव सर्वज्ञ हैं और सब उसमें स्थित हैं। वह अकृत्रिम देव अज, परमानन्द और अखन्डरूप है। उसको अवश्य पाना चाहिए जिससे परम सुख प्राप्त होता है।

हे मुनीश्वर ! तुम जागे हुए हो, इस कारण मैंने तुमसे इस प्रकार की देव–अर्चना कही है। पर जो असम्यकदर्शी बालक हैं, जिनको निश्चयात्मक बुद्धि नहीं प्राप्त हुई है उनके लिए धूप, दीप, पुष्प, चंदन आदि से अर्चना कही है और आकार कल्पित करके देव की मिथ्या कल्पना की है। अपने संकल्प से जो देव बनाते हैं और उसको पुष्प, धूप, दीपादिक से पूजते हैं सो भावनामात्र है। उससे उनको संकल्परचित फल की प्राप्ति होती है। यह बालक बुद्धि की अर्चना है।

हे मुनीश्वर ! हमारे मत में तो देव और कोई नहीं। एक परमात्मा देव ही तीनों भुवनों में है। वही देव शिव और सर्वपद से अतीत है। वह सब संकल्पों से अतीत है।

जो चैतन्यतत्त्व अरुन्धती का है और जो चैतन्यतत्त्व तुम निष्पाप मुनि का और पार्वती का है, वही चैतन्य तत्त्व मेरा है। वही चैतन्यतत्त्व त्रिलोकी मात्र का है। वही देव है, और कोई देव नहीं। हाथ–पाँव से युक्त जिस देव की कल्पना करते हैं वह चिन्मात्र सार नहीं है। चिन्मात्र ही सब जगत का सारभूत है और वही अर्चना करने योग्य है। यह देव कहीं दूर नहीं और किसी प्रकार किसी को प्राप्त होना भी कठिन नहीं। जो सबकी देह में स्थित और सबका आत्मा है वह दूर कैसे हो और कठिनता से कैसे प्राप्त हो ? सब क्रिया वही करता है। भोजन, भरण और पोषण वही करता है। वही श्वास लेता है। सबका ज्ञाता भी वही है। मनसहित षट्इन्द्रियों की चेष्टा निमित्त तत्त्ववेत्ताओं ने 'देव' कल्पित की है। एकदेव, चिन्मात्र, सूक्ष्म, सर्वव्यापी, निरंजन, आत्मा, ब्रह्म इत्यादि नाम ज्ञानवानों ने उपदेशरूप व्यवहार के निमित्त रखे हैं। वह आत्मदेव नित्य, शुद्ध और अद्वैतरूप है और सब जगत में अनुस्यूत है। वही चैतन्य तत्त्व चतुर्भुज होकर दैत्यों का नाश करता है, वही चैतन्य तत्त्व त्रिनेत्र, मस्तक पर चन्द्र धारण किये, वृषभ पर आरूढ़, पार्वतीरूप कमलिनी के मुख का भँवरा बनकर रूद्र होकर स्थित होता है। वही चेतना विष्णुरूप सत्ता है, जिसके नाभिकमल से ब्रह्म उपजे हैं। वह चैतन्य मस्तक पर चूड़ामणि धारनेवाला त्रिलोकपति रूद्र है। देवता रूप होकर वही स्थित हुआ है और दैत्यरूप होकर भी वही स्थित है।

हे मुनीश्वर ! वही चेतन शिवरूप होकर उपदेश दे रहा है और वही चेतन वशिष्ठ होकर सुन रहा है। उस परम चैतन्यदेव को जानना ही सच्ची अर्चना है।"

(श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अद्वैतनिष्ठा

एक बार रामकृष्ण परमहंस एक वटवृक्ष के नीचे सच्चिदानंद परमात्मा की अद्वैतनिष्ठा की मस्ती में बैठे थे। इतने में एक मुसलमान वहाँ आया। सफेद दाढ़ी.... हाथ में मिट्टी की एक हाण्डी... और उसमें रँधे हुए चावल। थोड़ी ही दूर पर बैठे हुए कुछ मुसलमानों को चावल खिलाकर वह बुजुर्ग रामकृष्णदेव के पास भी आया और चावल खिलाकर चला गया।

रामकृष्ण तो अपने सर्वव्यापक आत्म-चैतन्य की मस्ती में मस्त थे। वृत्ति जब ब्रह्माकार बनती है, सूक्ष्मता की चरम सीमा प्राप्त होती है तब 'मैं-तू'... मेरा-तेरा... हिन्दू-मुस्लिम... सिक्ख-ईसाई.... आदि सब भेद गायब हो जाते हैं। सबमें मैं ही आत्म-चैतन्य के स्वरूप में रमण कर रहा हूँ ' इस वास्तविकता का रहस्य खुलने लगता है। सम्पूर्ण जगत ब्रह्ममय हो जाता है। ऐसी दिव्य क्षणों में रममाण रामकृष्णदेव ने मुसलमान की हाण्डी के चावल खा तो लिये किन्तु जब वृत्ति स्थूल बनी, चित्त में भेदबुद्धि के पुराने संस्कार जागृत हुए तब दिल में खटका लगाः 'हाय हाय ! मैंने यवन के हाथ का भोजन खाया ? अच्छा नहीं किया।' रामकृष्ण उठकर भवानी काली के मंदिर में आये और माँ के चरणों में पश्चाताप के आँसू बहाते हुए प्रार्थना करने लगेः "माँ ! मुझे माफ कर। आज मैनें अभक्ष्य भोजन खा लिया। मुझसे अपराध हो गया। मुझे माफ कर दे।''

करूणामयी जगदम्बा प्रकट होकर बोलीं- "बेटा ! तेरी भेदबुद्धि तुझे भटका रही है। एक सच्चिदानंद परब्रह्म परमात्मा ही सर्व के रूप में रमण कर रहे हैं। जीव भी वे ही हैं, जगत भी वे ही हैं, मैं भी वहीं हूँ और तू भी वही है। वे सफेद दाढ़ी वाले मुसलमान तो मोहम्मद पैगंबर थे। वे भी वही हैं। उनमें और तुझमें कोई भेद नहीं। एक ही चैतन्यदेव सच्चिदानंद परमात्मा विभिन्न रूपों में विलास कर रहे हैं।"

आध्यात्मिक उत्थान चाहने वाले साधक के अन्तःकरण में अद्वैतभाव की अखण्डधारा रहनी चाहिए। अंतःकरण की अशुद्ध अवस्था में ही द्वैत दिखता है। अंतःकरण की उच्च दशा में अद्वैतभाव ही रहता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्म-कल्याण के लिए.....

प्रतिदिन नियमपूर्वक एकान्त में बैठकर मन से सम्पूर्ण संसार को भूल जाओ। इस प्रकार संसार को भुला देने से केवल एक चैतन्य आत्मा शेष रह जायेगा। तब उस चैतन्यस्वरूप का ध्यान करो। ध्यान करने से समाधि सिद्ध होगी और मुक्ति मिलेगी।

जो आदमी यम-नियम से चलता है उसकी वासनाएँ शुद्ध होती हैं। गलत कर्म रुक जाते हैं। धर्म से वासनाएँ शुद्ध होती हैं। उपासना से वासनाएँ नियंत्रित होती हैं और ज्ञान से वासनाएँ बाधित होती हैं।

इष्ट मजबूत हो तो हमारा अनिष्ट नहीं होता। आत्मभाव मजबूत हो, 'सुदर्शन' ठीक हो तो कुदर्शन हम पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। आत्मनिष्ठा मजबूत हो गई तो कोई देहधारी हमें परेशान नहीं कर सकता।

आनन्द परमात्मा का स्वरूप है। चारों तरफ बाहर-भीतर आनन्द-ही-आनन्द भरा हुआ है। सारे संसार में आनन्द छाया हुआ है। यदि ऐसा दिखलाई न दे तो वाणी से केवल कहते रहो और मन से मानते रहो। जल में गोता खा जाने, डूब जाने के समान निरन्तर आनन्द ही में डूबे रहो, आनन्द में गोता लगाते रहो। रात-दिन

आनन्द में मग्न रहो। किसी की मृत्यु हो जाये, घर में आग लग जाय अथवा और भी कोई अनिष्ट कार्य हो जाये, तो भी आनन्द–ही–आनन्द... केवल आनन्द–ही–आनन्द....

इस प्रकार अभ्यास करने से सम्पूर्ण दुःख एवं क्लेश नष्ट हो जाते हैं। वाणी से उच्चारण करो तो केवल आनन्द ही का, मन से मनन करो तो केवल आनन्द ही का, बुद्धि से विचार करो तो केवल आनन्द ही का। यदि ऐसी प्रतीति न हो तो कल्पित रूप से ही आनन्द का अनुभव करो। इसका फल भी बहुत अच्छा होता है। ऐसा करते–करते आगे चलकर नित्य आनन्द की प्राप्ति हो जाती है।

इस साधना को सब कर सकते हैं। हम लोगों को ही यह निश्चय कर लेना चाहिए कि हम सब एक आनन्द ही हैं। ऐसा निश्चय कर लेने से आनन्द–ही–आनन्द हो जायेगा।

भगवान की मूर्ति या चित्र को सामने रखो। आँखे खोलकर उनके नेत्रों से अपने नेत्र मिलाओ। त्राटक की भाँति आँखें एकटक रखकर उनमें ध्यान लगाओ। ध्यान के समय यह विश्वास रखो कि प्रेमस्वरूप, आनन्दस्वरूप भगवान अवश्य प्रकट होंगे। यह भी भगवदप्राप्ति का सुगम उपाय है।

ध्यान करते समय मन यदि स्थिर न होकर इधर–उधर भटकने लगे तो ध्यान करना छोड़कर मन को कहोः "अच्छा बेटा ! जाओ... जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहीं जाओ। सब रूप तो भगवान ने ही धारण कर रखे हैं। जो भी वस्तु दिखलाई देती हैं वे सब परमात्मा नारायण के ही रूप हैं।" सारे संसार में सबको भगवान का रूप समझकर मन–ही–मन भगवद् बुद्धि से सबको प्रणाम करो। एक परमात्मा ने ही अनन्त रूप धारण कर लिए हैं। बार–बार ऐसी भावना दृढ़ करते रहने से भगवद् दर्शन सुलभ हो जाता है।

यदि आपमें अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प है तो प्रगति अवश्य होगी। विनय भाव से सदगुणों का विकास होगा। दूसरों की सेवा करने की सच्ची निःस्वार्थ धुन है तो हृदय अवश्य शुद्ध होगा। दृढ़ विश्वास है तो आत्म–साक्षात्कार अवश्य होगा। यदि सच्चा वैराग्य है तो ज्ञान निःसन्देह होगा। यदि अटूट धैर्य है तो शांति अवश्य मिलेगी। यदि सतत् प्रयत्न है तो विघ्न बाधाएँ अवश्य नष्ट होंगी। यदि सच्चा समर्पण है तो भक्ति अवश्य आ जायेगी। यदि पूर्ण निर्भरता है तो निरन्तर कृपा का अनुभव अवश्य होगा। यदि दृढ़ परमात्म–चिन्तन है तो संसार का चिन्तन अवश्य मिट जायेगा। यदि सदगुरु का दृढ़ आश्रय है तो बोध अवश्य होगा। जहाँ सत्य का बोध होगा वहाँ समता अवश्य दृढ़ होगी। जहाँ पूर्ण प्रेम विकसित होगा वहाँ पूर्णानन्द की स्थिति अवश्य सुलभ होगी।

'संसार की कोई विषमता मुझे परेशान नहीं कर सकती। मेरे हृदय में ईश्वरीय प्रेम का संचार हो रहा है। मेरा चित्त, मेरा स्वभाव शांत एवं निर्दोष हो गया है। सम्पूर्ण अशांति, उद्वेग, मनोविकार एवं कुभाव मेरे चित्त की भूमिका से उखड़ गये हैं। मेरा स्वभाव बिल्कुल बदल गया है। संसार के प्रलोभन मुझे बंधन में नहीं डाल सकते। मेरे पवित्र और शुद्ध अंतःकरण में कोई क्षोभ और अशांति उत्पन्न करने वाली तरंगें हिलोरें नहीं ले सकतीं।'

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

चिन्तनिका

- गुणातीत होने के लिए गुणातीत महापुरुष की कृपा मिलना अनिवार्य है। यह सौभाग्य प्राप्त करने की पीठिका बने तब तक त्याग और वैराग्य बढ़ाते रहो। मुक्ति के लिए यह अनिवार्य शर्त है।

- शाश्वत चैतन्य देव को प्यार करोगे तो नश्वर चीजें अपने–आप पीछे–पीछे आयेंगी। कदाचित् नहीं भी आवें फिर भी आपको आत्मशांति तो मिलेगी ही। और.... उस आत्मशांति के आगे विश्व के किसी भी वैभव का कुछ भी मूल्य नहीं है।

  लोगों को खुश करने के फंदे में फँसना नहीं। सब लोग तुम पर खुश हो जायें यह सम्भव नहीं। तुम अपने हृदय में ईश्वर को सँभालो। हृदय को जलने मत दो, दुःखी न होने दो। सदा प्रसन्न रहो। ईश्वर के सिवाय जो कुछ है वह सब जल जाय तो हरकत नहीं। ईश्वर के साथ तन्मयता हो गई तो आत्मशांति मिल गई। आत्मशांति के सिवाय और क्या उद्देश्य मानव–जीवन में हो सकता है? आत्मशांति पाना ही परम पुरुषार्थ है।

- दैवी विधान से विपरीत चलोगे तो आपत्ति आयेगी ही। ईश्वर के सिवाय कहीं भी सत्यबुद्धि की तो ऐसा होगा ही।

- परमात्मा को सदा प्रार्थना करो किः " हे प्यारे प्रभु ! हमारे दिल दिमाग में आपके सिवाय और कुछ आये ही नहीं। हम संसार में फँसे नहीं। संसार के प्रति हमारे दिल में मोह जग जाय तो हे प्रभु ! हमारे दिल–दिमाग को भस्म कर देना। हे प्यारे ! आपके सिवाय कोई विचार उठे तो हमारी नस–नाड़ियों का खून सूख जाय। स्वर्ग–प्राप्ति के लिए आपका भजन करने लगें तो हमको कुम्भीपाक नर्क में डाल देना। स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए उपासना करें तो हमारे रोम–रोम में कीड़े पड़ें। कुछ भी करके हमारी भक्ति की रक्षा करना प्रभु ! जिससे हम सदा आपके चरणों लगे रहें।"

- संसार की नश्वरता देखकर, संसारियों की बेवफाई देखकर अनन्त शाश्वत् चैतन्यदेव में, परमात्मा में जो कूद नहीं पड़ता वह मूर्ख है।

  अपना जीवन ऐसा बनाओ कि आपको अपनी किसी भी आवश्यकता के लिए लोगों के पीछे भटकना न पड़े। लोग ही अपने आप तुम्हारे पीछे–पीछे आवें। तुमको नश्वर के पीछे दौड़ना न पड़े, नश्वर ही तुम्हारे पीछे दौड़ता आवे क्योंकि तुम सच्चिदानंदस्वरूप हो। बस, अपने उस शाश्वत स्वरूप को जान लो। फिर जीवन के तमाम कर्त्तव्य पूरे हो जायेंगे।

- बालक ज्यों–ज्यों बड़ा होता है त्यों–त्यों जननी के प्रति अनन्यता कम होने से वह जननी से, आपनी वात्सल्यमयी माँ से दूर होता जाता है। परन्तु भक्तिमार्ग में आगे बढ़ने वाला साधक ईश्वर के प्रति अनन्यता बढ़ने से वह दिन–प्रतिदिन अधिकाधिक ईश्वर के नजदीक होता जाता है।

  भाग्यवान् जीवों को संत–महात्मा तथा ईश्वर में जल्दी श्रद्धा हो जाती है जबकि दुष्ट और मूढ़ लोग जीवन के किसी कोने में पड़े हुए एकाध पुण्य के कारण देरी से भी जाग जायें तो भाग्य उनका। अन्यथा तो, ऐसे लोग मृत्युपर्यन्त संत–महापुरुषों के मार्ग में काँटे और कादव–कीचड़ ही डालते हैं।

- परम पुरुषार्थ के मार्ग में कूद पड़ो। भूतकाल के पश्चाताप और भविष्य की चिन्ता छोड़कर निकल पड़ो। परमात्मा के प्रति अनन्य भाव रखो। फिर देखो कि इस घोर कलियुग में भी तुम्हारे लिए अन्न, वस्त्र और निवास की कैसी व्यवस्था होती है !

जीवन के बोझ को फेंककर हल्के फूल जैसे निर्दोष बनने के लिए कहीं-न-कहीं अनन्य भाव रखना ही पड़ेगा। कितने ही लोग किसी देवी-देवता में अनन्य भाव रखते हैं और वेदान्त का सत्संगामृत पीने वाला साधक सच्चिदानंद परमात्मा में अनन्य भाव रखता है।

- जिस साधना में तुम्हारी भावना होगी उस साधना में ईश्वर मधुरता भर देंगे। तुम्हारी भावना, तुम्हारी निष्ठा पक्की होना महत्त्वपूर्ण है। तुम्हारे परम इष्टदेव तुम पर खुश हो जायें तो अन्य अनिष्ट तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। परम इष्टदेव है तुम्हारी आत्मा, तुम्हारा निज स्वरूप।

- परमात्मा में तुम्हारी अनन्य भक्ति हो जाय तो परमात्मा तुम्हें कुछ देंगे नहीं, वे तुम्हें अपने में मिला लेंगे। अब बताओ, आपको कुछ देना शेष रहा क्या?

- मधुराभक्ति का आलिंगन इतना मधुर होता है कि उसके आगे ब्रह्मलोक का ऐश्वर्य काकविष्टा के समानत तुच्छ है।

- ईश्वर के सिवाय अन्य तमाम सुखों के इर्द-गिर्द व्यर्थता के काँटे लगे ही रहते हैं। जरा-सा सावधान होकर सोचोगे तो यह बात समझ में आ जायेगी और तुम ईश्वर के मार्ग पर चल पड़ोगे।

- लौकिक सरकार भी अपने सरकारी कर्मचारी की जिम्मेदारी सँभालती है। ऊर्ध्वलोक की दिव्य सरकार, परम पालक परमात्मा अध्यात्म के पथिक का बोझ नहीं उठायेंगे क्या ?

  कुदरत के आखिरी नियम बहुत कठोर हैं। अन्त में, तुम्हारे मोह पर वे डण्डा मारेंगे। अतः अभी से सावधान हो जाओ। कूड़-कपट, छल-प्रपंच को भीतर से छोड़ते जाओ। आसक्ति का आवरण धीरे-धीरे हटाते जाओ। अन्यथा, अन्त समय में जबरन सब छीन लिया जायेगा। लोग मोह छोड़ने की जगह पर आकर भी मोह करने लगते हैं। संत के पास आकर भी मकान-दुकान, नौकरी-धन्धा माँगते हैं, लेकिन आत्मज्ञान नहीं माँगते।

  शरीर का लालन-पालन थोड़ा कम करेंगे तो क्या हो जायेगा ? शरीर की सँभाल नहीं लेंगे तो क्या वग दो दिनों में गिर जायेगा? नहीं। ईश्वर में मस्त रहोगे तो शरीर के खान-पान प्रारब्ध वेग से चलते रहेंगे। ईश्वर को छोड़कर शरीर के पीछे अधिक समय व शक्ति लगाओ नहीं। 'यह शरीर ईश्वर का संदेश देने के लिए प्रकट हुआ है। जब तक यह कार्य पूरा नहीं होगा तब तक वह गिरेगा नहीं.....' ऐसा समझकर साधना, ध्यान भजन में लग जाओ। शरीर की चिन्ता छोड़ दो। मरने वाले तो पलंग पर भी मर जाते हैं और बचने वाले भयानक अकस्मातों में भी बच जाते हैं।

  संसारियों की, अज्ञानियों की प्रीति, भक्ति और सम्मान से दूर रहो। वे लोग कब क्या करेंगे, कुछ कह नहीं सकते। ईसा के लिए नगर सजाकर सम्मान करने वाले लोगों ने ही प्रेम का पाठ पढ़ाने वाले ईसा को बाद में क्रॉस पर लटकाये। सत्य की खोज में जीवन बिताने वाले सॉक्रेटीस को, सत्य हजम नहीं करने वाले लोगों ने विष पिलाया। 'अहिंसा परमो धर्मः' का झण्डा लेकर झूझने वाले गाँधी पर गोलियाँ बरसायीं। अज्ञानियों के ऐसे कृत्यों से सारा इतिहास भरा पड़ा है।

- एक जवान लड़का कुएँ के पनघट पर गन्दगी कर रहा था। एक बुढ़िया ने पूछाः "बेटा ! तू कौन है? कहाँ से आया है? यह क्या कर रहा है?"

"मैं फलां गाँव से आया हूँ। मेरी औरत भाग गई है उसे खोजने निकला हूँ।"
"क्या नाम है तेरी औरत का?"
"उसका नाम है फजीती।"
"अभी तक वह तुझे नहीं मिली?"
"नहीं मिली।"
"मिल जायेगी। चिन्ता मत कर। तेरा आचरण ही ऐसा है कि तू जहाँ जायेगा वहाँ फजीती तुरन्त हाजिर।"

मूर्ख के पीछे–पीछे फजीती चलती है। अपने चित्त में बेवकूफी रहेगी तो फजीती होगी ही। चाहे कहीं भी जाओ, विश्व के किसी भी कोने में जाओ या वैकुण्ठ में जाओ, जब तक अपने चित्त में अज्ञान चालू है तब तक फजीती है ही। स्वयं को वह दिखे या न दिखे वह अलग बात है लेकिन होती है जरूर।

तमाम फजीतियों से, तमाम दुःखों से जान छुड़ाने का एकमात्र सच्चा उपाय है आत्मज्ञान।

समझदार को कुदरत की थप्पड़ लगती है तो वह नश्वर के पीछे दौड़ना छोड़कर अनन्त में कूदने का सामर्थ्य जगा लेता है। नादान को कुदरत की थप्पड़ लगती है तो वह अधिक पागल होकर वस्तुओं के पीछे दौड़ता है।

- निर्दोषता, निष्कपटता और त्याग जितना बढ़ाओगे उतनी तुम्हारी शक्ति बढ़ेगी। आसक्ति और इच्छाएँ जितनी बढ़ाओगे उतने ही भीतर से खोखले और दीन–हीन हो जाओगे।

- पक्षियों के साथ आकाश का कोई सम्बन्ध नहीं है। आकाश निर्लेप है, असंग है।

- जीवन नदी के प्रवाह जैसा है। उसमें सुखरूपी फूल भी बहते हैं और दुःखरूपी काँटे भी बहते हैं। तुम किनारे पर बैठे हो द्रष्टा होकर। तुमको उसका स्पर्श कैसे हो सकता है ?

- ईश्वर का भजन भी करना और अपने को देह मानना यह एक म्यान में दो तलवार रखने के समान है। देहाध्यास सर्व पापों का बाप है ! देहाध्यास आते ही तुम्हारे इर्द–गिर्द कर्त्तव्यों की भीड़ लग जाती है।

- जिसके जीवन में उन्नत होने की आशा न हो, वह मुर्दा है।

- अज्ञानी रहना सबसे बड़ा पाप है। अज्ञानी पुण्य करेगा तो भी बन्धन में पड़ेगा और ज्ञानी के द्वारा पाप होता दिखे तो भी वे निर्लेप रहेंगे, दुःखी नहीं होंगे। हनुमानजी ने लंका जलायी फिर भी उनको दोष न लगा। राजा अज ने हजारों गायों का दान किया फिर भी उन्हें दोष लगा और अजगर की योनि मिली।

- अध्यात्म–मार्ग में कूद पड़ो। डरो नहीं। जितने दिन गये उतने सुख–दुःख गये। प्रारब्ध के खाते में इतना हिसाब पूरा हुआ। कितने ही शरीर, कुटुम्ब, सम्बन्ध और संसार आये और गये, अब मोह किसका ? चिन्ता किसकी ? मौज में रहो और प्यारे परमात्मा का भजन करो।

- जिस प्रकार बर्तन को हर रोज मलें नहीं, साफ न करें तो जंग लग जाता है, उसी प्रकार मन को हररोज आत्मस्थ न करें तो मन की आसक्ति बढ़ जाती है, साधना–पथ उतना लम्बा हो जाता है। आसक्ति पूर्वक कार्य किये जायें तो मन को जंग लग जाता है। उस जंग को दूर करने की प्रक्रिया है उपासना, योग और भक्ति। मृत्युपर्यन्त यह प्रक्रिया चलनी चाहिए। हर क्षण जागृत रहना है। अहंभाव काले साँप जैसा है। वह कब घुसकर बैठ जाता है, कुछ पता नहीं चलता।

- अज्ञानी हो या ज्ञानी, सबको देह विषयक थोड़ा बहुत अहंकार तो रहता ही है। देह के कष्ट दोनों को होंगे। ज्ञानी संकल्प–विकल्प करके दुःखी नहीं होते जबकि अज्ञानी विचार की परम्परा से परेशान होता है। कार्य करो लेकिन आनन्दपूर्वक, एकाग्र चित्त से, समता से करो। अर्धदग्ध मन से, अशांत चित्त से कार्य न करो। खूब समतापूर्वक कार्य करने से आसक्ति नहीं होती।

- सदगुरु के प्रति अनन्य भाव जाग जाय तो वे तुम्हारी जीवन की डोर सँभाल लेंगे और खेल–खेल में, हास्य–विनोद में तुम्हारी परम धाम की यात्रा पूर्ण करा देंगे।

- पर्व के दिन किया हुआ शुभ कार्य अधिक फलदायी होता है।

- गुरूपूर्णिमा (आषाढ़ की पूर्णिमा) के दिन गुरूपूजन करने की बड़ी महिमा है। जो गुरुभक्त हैं, ब्रह्मवेत्ता सदगुरु से जिन्होंने मंत्रदीक्षा प्राप्त की है वे जानते हैं कि गुरुपूर्णिमा के दिन की हुई गुरुपूजा से सारे वर्षपर्यन्त किये हुए सत्कार्य करने का फल मिल जाता है। जो लोग उस दिन गुरुपूजा नहीं कर पाते या कोई अपराधवश उनकी पूजा का स्वीकार नहीं होता, उनका अनुभव होता है कि सारा वर्ष परेशानी में ही बीतता है। उस दिन जो लोग गुरुपूजा करते हैं, जिनकी पूजा का स्वीकार हो जाता है वे लोग पूरा वर्ष आनंदित, प्रसन्न और कार्यों में सफल होते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ॐ स्वास्थ्य के लिए मंत्र ॐ

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

'हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे गोविन्द ! इस नामोच्चारणरूप औषध से तमाम रोग नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ.... सत्य कहता हूँ।'

(धन्वंतरि)

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ